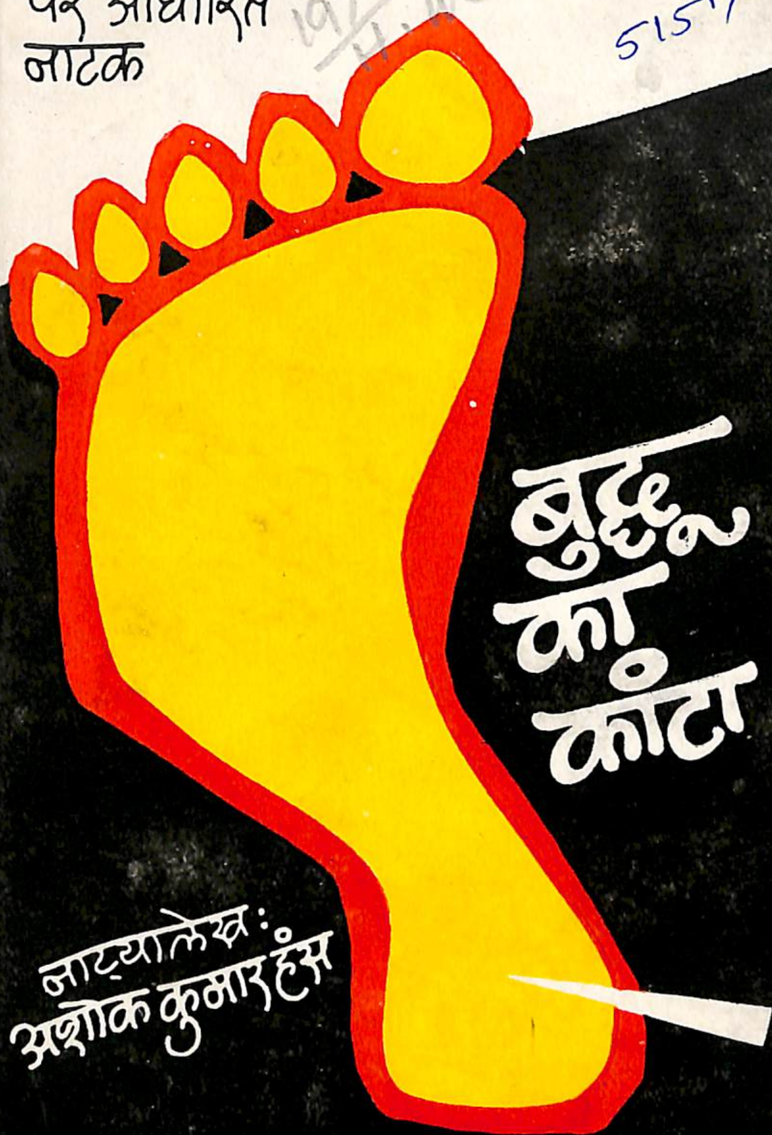
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी
पर आधारित
नाटक



बुद्धू का काँटा

नाट्यालेख :
अशोक कुमार हंस

ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति

बुद्धू का कांटा

(स्व० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी पर आधारित नाटक)

नाट्यालेख :
अशोक कुमार हंस



ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति
नई दिल्ली-११०००२

प्रथम संस्करण	१९८४
प्रकाशक	दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति ४६६२/२१ दरियागंज नई दिल्ली-२
मूल्य	पन्द्रह रुपये
मुद्रक	ग्रन्थशिल्पी, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Buddhu Ka Kanta, Dramatic Adaptation from a story of Shri Chandradhar Sharma 'Guleri' by Ashok Kumar Hans.
Published by Rishabh Charan Jain. Evam Santati,
New Delhi-110002

Price Rs. 1500

प्रथम प्रस्तुति

हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला के तत्वावधान में दिनांक ३० दिसम्बर, १९८३ को काली बाड़ी हाल, शिमला में।

अभिनय

रघुनाथ की मां	: सविता सूद	औरत	: पूनम
बहू	: राजेश	पहली वृद्धा	: मिताली बोस
दूसरी वृद्धा	: उषा	तीसरी वृद्धा	: आरती सूद
चौथी वृद्धा	: अनुपमा	मोहिनी	: अनीता कौशल
बाबू जी	: प्रवीण चांदला	इलाही	: दीपक भण्डारी
रघुनाथ	: सत्य प्रकाश	यात्री	: अरुण शीटक
वृद्ध	: ओंकारलाल भारद्वाज	लड़की-१	: राजेश
पहली स्त्री/मामी	: सुनीता वर्मा	दूसरी स्त्री	: मिताली बोस
तीसरी स्त्री	: अनुपमा	चौथी स्त्री	: राजेश
पांचवी स्त्री	: कृष्णा कपूर	छठी स्त्री	: आरती सूद
कन्या/भाग्यवन्ती	: भारती सूद	रघुनाथ के चाचा/गंगाराम	: अरुण शीटक
पंडित जी	: ओम प्रकाश	महिला	: मिताली बोस
पुरुष	: शेखर भट्टाचार्य	लड़की-२	: शीतल चन्देल
घनश्याम दास	: ओंकार लाल भारद्वाज	पहली बूढ़ी	: पूनम
दूसरी बूढ़ी	: कृष्णा कपूर	तीसरी बूढ़ी	: उषा
चौथी बूढ़ी	: अनीता कौशल	कहार	: शेखर भट्टाचार्य

निर्देशन

अशोक कुमार हंस

गायक

नील कमल सूद, प्रवीण चांदला, शेखर भट्टाचार्य, अरुण शीटक, कृष्णा कपूर, मिताली बोस, उषा, अनीता कौशल, अनुपमा।

वादक

बांसुरी	: शंकर लाल	ढोलक	: ओम प्रकाश
कांसी	: नील कमल सूद	घड़ा	: शेखर भट्टाचार्य

तकनीकी कार्य

वेश-भूषा और मंच-सज्जा	: अशोक कुमार हंस
मंच-सज्जा में सहायक	: ओम प्रकाश सुजानपुरी
रूप सज्जा	: सनत कुमार चटर्जी
	: ओम प्रकाश सुजानपुरी
	: शुभ्रा चक्रवर्ती
प्रकाश संयोजन	: डी० पी० घोषाल

आमुख

स्व० पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की तीन कहानियां—'सुखमय जीवन', 'उसने कहा था' और 'बुद्धू का कांटा'—मैंने इसलिए पढ़ीं क्योंकि ७ जुलाई, १६८३ से देश भर में आयोजित उनकी जन्म शताब्दी पर उन्हीं की कहानियों में से किसी एक के नाटकीकरण की बात साहित्यकारों में चल रही थी। बहुत से गुलेरी प्रेमियों का यह मत था कि नाटकीकरण के लिए 'उसने कहा था' अधिक उपयुक्त होने के कारण, उक्त कहानी पर आधारित नाटक की प्रस्तुति ही अनुसरणीय है। मेरे मन में किन्तु हमेशा यह बात रही कि 'उसने कहा था' पर 'बिमल राय प्रोडक्शन' द्वारा एक सम्पूर्ण वृत्त चलचित्र तथा 'सूर्योदय चित्रा' द्वारा एक लघु चलचित्र का निर्माण पहले ही हो चुका है। इसके अलावा इस कहानी के रेडियो और अन्य रूपान्तर हुए हैं। जहां तक 'बुद्धू का कांटा' का प्रश्न है अब तक इस पर कोई भी नाटक अथवा चलचित्र सामने नहीं आया है। अतः मैंने मन में ठाना कि 'बुद्धू का कांटा' के मंचन से पहले कहानी का एक व्यवहारिक आलेख तैयार कर लिया जाए। नाटक लेखन यद्यपि मेरा विषय नहीं फिर भी इस कहानी के बारे में मैंने एक खास धारणा बना ली थी और यह भी तय कर लिया था कि कौन-सा दृश्य कैसे लिखा जाएगा। फलतः मैं लेखन की ओर हिचकिचाते हुए भी आगे बढ़ गया और परिणाम आपके सामने है।

गुलेरी जी की किसी भी कहानी के नाटकीकरण की बात सोचते ही पहले मेरे दिमाग में फिल्म-माध्यम आ जाता था। अतः मंच के लिए नाटक

का आलेख तैयार करते हुए 'बुद्धू का कांटा' की कहानी पर मेरी काफ़ी जद्दोजहद चलती रही। रचना प्रक्रिया के दौरान कहानी के कुछ दृश्य मुझे मंच के दृष्टिकोण से कमज़ोर लगने लगे। ऐसे दृश्यों में एक 'इलाही वाला' तथा दूसरा 'नदी वाला' उल्लेखनीय हैं। इलाही के प्रसंग का दृश्यांकन करते समय नवाब, इलाही की बीबी, हरम की रखैलें, नौकर-चाकर आदि पात्रों का ताना-बाना पहले मैंने अपने ढंग से रचा था जिससे नाटक में न केवल बिखराव ही आया बल्कि दृश्य भी छोटे-छोटे बन गए। मंच की विधा एक विशिष्ट विधा होती है अत: फिल्मी शैली की इस कहानी को मंच की विशिष्ट विधा में प्रस्तुत करना मुझे उस दौरान असम्भव सा लगने लगा था। मैंने सोचा इलाही का पूरा सन्दर्भ ही काट दिया जाए पर ऐसा करना भी मेरे लिए असम्भव था। मैं इलाही के चरित्र की हत्या नहीं कर सकता था। गुलेरी जी ने इस पात्र की रचना कर अपने पाठकों के मन पर एक गहरी एकल छाप छोड़ी है।

इलाही के अतिरिक्त नदी वाले दृश्य में—भाग्यवन्ती का नदी में उतरना और रघुनाथ को बचाना आदि कार्य मूकाभिनय अथवा प्रकाश संयोजन के माध्यम से भी मुझे प्रस्तुति योग्य नहीं लगे।

उपरोक्त सन्दर्भ में यह बता देना उचित समझता हूं कि केवल नाटक का मंचीकरण ही सम्पूर्ण नाटकीय प्रक्रिया (ड्रेमेटिक प्रोसेस) नहीं है, इसे लिखना भी प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। खैर नाटक में मैंने इन दोनों दृश्यों को एक अलग अन्दाज़ में प्रस्तुत करने की कोशिश भर की है।

मेरे लिए, और इस दृष्टि से किसी भी रूपान्तरकार के लिए अन्य रास्ता यह होता कि कहानी को सम्पूर्ण ग्रहण कर लिया जाता और मूल पाठ को छोड़कर सम्वादों का एक नया सांचा तैयार किया जाता। ऐसा होने से नाटक को तीन अंकों में ही समाप्त किया जा सकता था। मगर कहानी को—जिसका अपना एक इमेज है—मैंने छोड़ना अनैतिक समझा। ऐसा करता तो कहानी की आत्मा मर जाती और गुलेरी प्रेमियों (जिनमें मैं भी एक हूं) के बीच में आलोचना का विषय बन जाता। अत:

नाटक को एक नए जिस्म में ढालते हुए मेरी यह बराबर कोशिश बनी रही कि मूल कथा को सम्वादों और नाट्य व्यापार के बीच ज्यों-का-त्यों जीवित रखूं। अपने इस अन्तर्संघर्ष में अगर मैं पूरा उतरा हूंगा तो इसे मैं आपकी सौजन्यता और अपनी सफलता मानूंगा।

मंच की तकनीकी आवश्यकताओं को सम्मुख रखते हुए जहां-जहां मुझे ज़रूरी लगा है मैंने गुलेरी जी के मूल सम्वादों को उनके विशिष्ट तेवर के साथ मंचोपयुक्त बनाया है। ऐसा अनिवार्य था क्योंकि जो सम्वाद कहानी पढ़ते समय परिकल्पना में स्पष्ट होते हैं, मंच पर वार्तालप करते समय अधूरे लगते हैं क्योंकि कहानी और नाटक दोनों विधाओं में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। नाटक के पिंजर को पूर्ण रूप देने के लिए अनेक सम्वाद मैंने स्वयं लिखे हैं ताकि कहानी की आत्मा को जीवित रखते हुए नाटक में प्रस्तुत किया जा सके। मानवीय पात्रों, विशेष रूप से स्त्री-पुरुष युग्मों को आपस में मिलाना गुलेरी जी की कहानियों का मूल उद्देश्य रहा है। 'उसने कहा था' और 'बुद्धू का कांटा' में अपनी पहचान के सम्वाद* देकर छाप छोड़ना गुलेरी जी की साहित्य के कहानी क्षेत्र में एक बहुत बड़ी देन है। इन दो सम्वादों का ज़िक्र न करना मेरी एक बहुत बड़ी भूल होगी। 'बुद्धू का कांटा' के नाटकीकरण में 'उसने कहा था' का 'तेरी कुड़माई हो गई' वाले सम्वाद के प्रयोग का मोह भी मैं नहीं छोड़ पाया। यह सम्वाद प्रस्तुत नाटक के कुएं वाले दृश्य में स्पष्ट नजर आएगा।

नाटक मंचन की दृष्टि से ही लिखा जाता है और मैं स्वयं निर्देशक भी हूं। अतः जिस रंगमंचीय माहौल में काम कर रहा हूं—मेरा तात्पर्य

---

* (क) 'तेरी कुड़माई हो गई ?' 'धत् !' (उसने कहा था)
(ख) 'वाह जी वाह, ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई लहंगा पसारेगी !' (बुद्धू का कांटा)

२० × २५ है या २५ × ३० के मंच से है—उसी दृष्टि से यह नाटक लिखा गया हैं। ऐसे मंच पर हर दृश्य के लिए अलग-अलग सज्जा करना या एक ही समय में सभी दृश्यों की मिश्रित सज्जा करना मेरे जैसे निर्देशक के विचारों में नहीं है। यदि मुझे यह बड़े कैनवस की दृष्टि से लिखना होता तो किसी अन्य ढंग से लिखता। माहौल बनाने, स्थिति को कायम करने आदि के लिए कहीं-कहीं 'स्टेज और हैंण्ड प्रापर्टीज़' का प्रयोग भी करना पड़ा है। मूकाभिनय और पृष्ठ सम्वादों की भी अनेक स्थलों पर सहायता ली गई है। हां, कुंए-दृश्य में कुंआ दिखलाना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि यह सैट नाटक का एक रंगीय अंक है। पालकी वाले दृश्य में इसी तरह पालकी का दिखाना भी जरूरी समझा गया है।

नाटक में प्रयुक्त गीतों की पंक्तियां पारम्परिक गीतों से ली गई हैं। कुंजू-चंचलों हिमाचल प्रदेश के चम्बा क्षेत्र का प्रसिद्ध गीत है। शादी का गीत कांगड़ा क्षेत्र का है तथा होली का गीत उत्तरप्रदेश का पारम्परिक गीत है।

प्रस्तुत नाटक में देखना यह है कि मंच की दृष्टि से यह निर्देशक और दर्शकों के लिए कहां तक रुचिकर बन पाया है।

शिमला
बैसाखी १९८४

अशोक कुमार हंस

प्रकाशकीय

हिन्दी नाटकों में मौलिकता और सृजनात्मकता की कमी हमेशा शिकायत का विषय रही है। आज जिन नाटकों का मंचन होता है, उनमें से अधिकतर या तो दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं से अनूदित होते हैं या फिर विदेशी भाषाओं से। इस कमी को दूर करने के दो उपाय नज़र आते हैं या तो मौलिक नाटक लिखे जाएं या फिर हिन्दी साहित्य से प्रासंगिक और उपयुक्त नाट्य-रूपान्तरण हों। निस्संदेह दोनों ही कार्य जिम्मेवारी और रचनात्मकता के साथ-साथ मौलिकता की माँग करते हैं। फिर नाटक के अपने पक्ष होते हैं, अपनी शक्ति-सीमाएँ होती हैं, नाटककार या रूपान्तरकार शक्तियों का कितना उपयोग कर सकता है, सीमाओं से कितना दूर रह सकता है। इसी पर उसकी सफलता निर्भर करती है।

प्रस्तुत नाट्यालेख हिन्दी कहानी के उस युग की कहानी पर आधारित है, जब हिन्दी कहानी तथाकथित प्रयोगवादी दौर से गुजर रही थी यानी सन् १९१०-१५ के आस-पास। आज जबकि हिन्दी कहानी का इतना विकास हो चुका है, प्रस्तुत नाट्यालेख उसी कहानी पर आधारित होने के बावजूद प्रशंसनीय, प्रासंगिक है, इसके कई कारण हैं। गुलेरी की मात्र तीन कहानियों में 'बुद्धू का कांटा' की अपनी ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उसे काल की सीमा से परे ले जाती हैं। अब अगर नाट्यालेख की ही बात करूँ तो गुलेरी जी की कहानी की भी विशेषताएँ, जो नवे दशक में भी उसे उतना ही जीवन्त, प्रासंगिक रखे हुए है, प्रकट होती जाएंगी।

एक साथ मनोविज्ञान, प्रेम के अव्यक्त और सूक्ष्म मनोभावों, गाँव के प्राकृत जीवन की निश्छलता तथा शहर के अप्राकृत जीवन की अव्यावहा-

रिकता को जिस भावनात्मक तथा चुल-बुली शैली में यह नाटक प्रस्तुत करता है, वह मानवीय संवेदना के धरातल पर दर्शकों को सिक्त कर देगा, इसमें कोई संदेह नहीं। रघुनाथ-इलाही का प्रसंग मंचन की दृष्टि से, अगर निर्देशन सशक्त नहीं रहा तो, दर्शकों को ऊबाऊ लग सकता है परन्तु प्रस्तुत नाट्यालेख में उसे एक ऐसी भाव-पीठिका पर स्थापित किया गया है कि वह भी सहज और सम्प्रेषणीय बन गया है। जहाँ तक संवेदना के स्तर पर मानव द्वारा (विशेषकर स्त्री-पुरुष द्वारा) एक-दूसरे को महसूस करने, समझने का प्रश्न है, उसका मनोवैज्ञानिक और सहज विकास तो है ही, प्रणय-घटना का गँवई रूप भी बहुत स्वाभाविक है।

हाँ, किसी कहानी को आधार बनाने पर रूपान्तरकार के सामने एक सीमा-रेखा खींच दी जाती है। उस दृष्टि से रूपान्तरकार कभी सशक्त और अभिव्यक्ति प्रधान संवादों की रचना करने में चूक जाता है, परन्तु प्रस्तुत नाटक में गुलेरी जी के कथ्य की मौलिकता कायम रखते हुए भी रूपान्तरकार ने भाव्यभिव्यक्ति को पंगु नहीं होने दिया है, ऐसा लगता है। मंचन के साथ-साथ इसकी विशेषताएँ—कमियाँ सामने आएँगी हीं। परन्तु प्रस्तुत रूपान्तर हिन्दी नाट्य-जगत के अभाव को पूरा करने में अपनी भूमिका निभाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं। अस्तु।

बुद्धू का कांटा

[मंच पर धीमा प्रकाश आता है। रघुनाथ की मां एक पटरे पर बैठी खाना बनाने एवं घर का अन्य कार्य करने का मूकाभिनय कर रही है। तेज़ प्रकाश आने पर लाहना देने के लिए एक औरत का अपनी बहू सहित प्रवेश। साथ में कुछ वृद्धाएं भी हैं।]

औरत : रघु की मां, हम लाहना देने आई हैं। यह है हमारे किसन की दुल्हनियां।

[बहू पांव छूती है।]

रघुनाथ की मां : जुग-जुग जियो बेटी! (**बहू का घूंघट उठा कर उसे निहारती है**) किसन की मां, लाड़ी तो बहुत सुन्दर लाई हो। कहां से पाया है यह अनमोल रतन? बड़े भाग से मिलती है ऐसी जोड़ी-किसन की मां।

औरत : नाम भी लाड़ली है बहू का। मथुरा के रहने वाले हैं हमारे समधी। बीड़ियों के थोक व्यापारी हैं। हजारों

की जायदात है। तुझे तो मालूम ही है कि किसन के ब्याह के लिए हमें गांव जाना पड़ा। यहां करते शादी तो तुम भी देखतीं कि कितनी धूमधाम से रचाया मैंने किसन का ब्याह।

रघुनाथ की मां : बच्चे की चिन्ता किस मां को नहीं होती। हमारे भी है रघु। जाने कब मेरे आंगन-द्वार पर बहू का पांव पड़े। ईश्वर चाहेगा तो इसी साल रघु का भी ब्याह कर देंगे।

औरत : लो, लाहना तो लो।

रघुनाथ की मां : (**लाहना लेती है।**) तुम लोग बैठो, मैं अभी आई।

औरत : भई, हम अब बैठ नहीं सकतीं। और घरों में भी जाना है।

रघुनाथ की मां : एक पल तो रुक जाओ किसन की मां। मैं अभी आई। बहू खाली हाथ थोड़े ही जाएगी ?

[लाहना यथा-स्थान रखने तथा बहू की गोद भरने के लिए मेवा लाने जाती है।]

पहली वृद्धा : पन्द्रह बरस हो गए लाहना लेते-लेते, आज तक एक बतासा भी नहीं मिला इनके यहां से।

दूसरी वृद्धा : बड़े भागों से होता है बेटों का बियाह।

तीसरी वृद्धा : अपने खाने-पहरने का कोई लोभ छोड़े तब तो बेटे के लिए बहू लावे।

चौथी वृद्धा : ऐसे कमाने-खाने को लगे आग। यों तो बहना कुत्ते भी अपना पेट भर लेते हैं। पेड़ को फलदार बनाने और कमाई हलाल करने का यही तो मौका होता है। चूक गए तो रह गई बात। मेरे खसम ने चारों बेटों की शादी के लिए पूरी जायदात गिरवी रख दी थी। फिर चाहे

हमें जीवन भर के लिए कंगाली का कम्बल ओढ़ना पड़ा हो। औलाद के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता। तिल-तिल जलाना पड़ता है अपने आप को।

[रघुनाथ की मां वापस लौटती है। हाथ में मेवों से भरी वही थाली है।]

रघुनाथ की मां : लो बहू तुम्हारी गोद भरी रहे।

[एक-दो मेवे के दाने थाली में रहने देती है और थाली लौटा देती है।]

पहली वृद्धा : लेकिन छबीला को देखो। पांच कुंवारी लड़कियाँ बैठी हैं। फिर भी कम्बख्त ऐसी बन-ठन के निकलती है कि जैसे अभी खुद भी ब्याहने को हो।

तीसरी वृद्धा : मां-बाप का असर औलाद पर पड़ता है। जैसा पेड़ वैसे उसके फल। बड़ी कुर्बानियां करनी पड़ती हैं औलाद के लिए मां-बाप को।

चौथी वृद्धा : हाय री, मैं वारी जाऊं! छबीला का खसम लाला गणेसी दास भी निगोड़ा कम नहीं। दिन-भर करे है मिलावट की कमाई और रात को घर पहुंचे है नसे में धुत्त्। न है लड़कियों की सर्म और न दुनिया की लाज।

औरत : अच्छा बहना हम तो चलीं।

[औरत और बहू चली जाती हैं।]

पहली वृद्धा : इनको जाने दो भई। हम आई हैं तो रघु की मां से दो

घड़ी बात भी करती जाएं।

रघुनाथ की मां : बैठो-बैठो, खड़ी क्यों हो।

दूसरी वृद्धा : रघुनाथ का बियाह इस साल तो करोगी ?

रघुनाथ की मां : उसके चाचा जानें, गहने तो बनवा रहे हैं।

तीसरी वृद्धा : बहन, मैं तुम्हें सलाह देती हूं कि जल्दी रघुनाथ का ब्याह कर लो। कलजुग के दिन हैं, लडका बोर्डिङ्ग में रहता है, बिगड़ जाएगा। आगे तुम्हारी मर्ज़ी। (पहली वृद्धा से) क्यों बहन सच है न ? तुम क्यों नहीं बोलतीं ?

पहली वृद्धा : मैं क्या कहूं, मेरा रघुनाथ का-सा बेटा होता तो अब तक पोता खिलाती।

तीसरी वृद्धा : मैं तो अब चली बहनों। घर का काम-काज देखें चल के कि बहू ने क्या कुछ किया है। लैलवा के पिता भी आते होंगे।

चौथी वृद्धा : मैं भी चलती हूं बहना। कल करेंगे बाकी बात।

दूसरी वृद्धा : (जाते-जाते) रघुनाथ की मां, बियाह कर लो अब रघु का।

पहली वृद्धा : (चलते-चलते) पता नहीं पहाड़ों में क्या रिवाज़ होते हैं।

तीसरी वृद्धा : (चलते-चलते दूसरी वृद्धा से) तुम तो तीन बड़ी और दो छोटी पतोहुओं की सेवा से बहुत सुखी होंगी ?

दूसरी वृद्धा : तभी तो रोज़ मौत को बुलाया करती हूं। यम का ध्यान धरती हूं कि संसार के फंदों से छुड़ाए। बुढ़ापे में दूसरों के मोहताज बने रहना मुझे मंजूर नहीं। जब तक हाथ-पांव चलते रहें बस तभी तक जीना अच्छा लगता है।

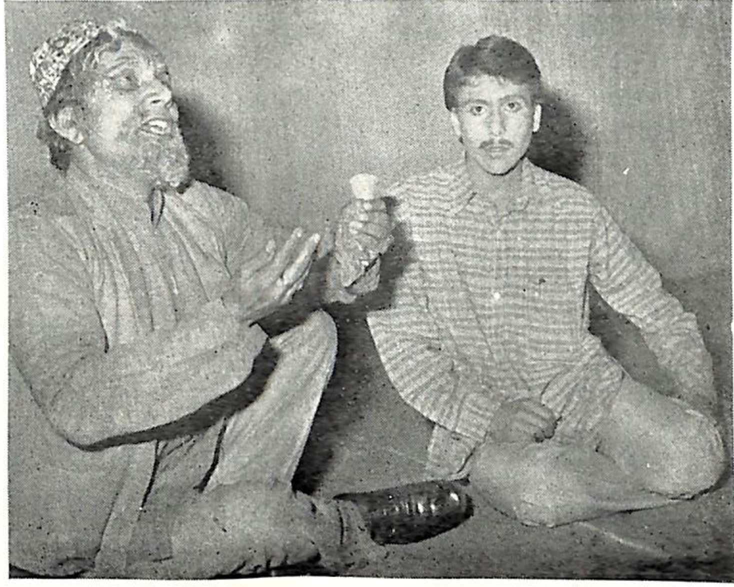
[रघुनाथ की मां का एक औरत से वार्तालाप, जो अभी तक चुपचाप खड़ी थी।]



बाबूजी और रघुनाथ की माँ

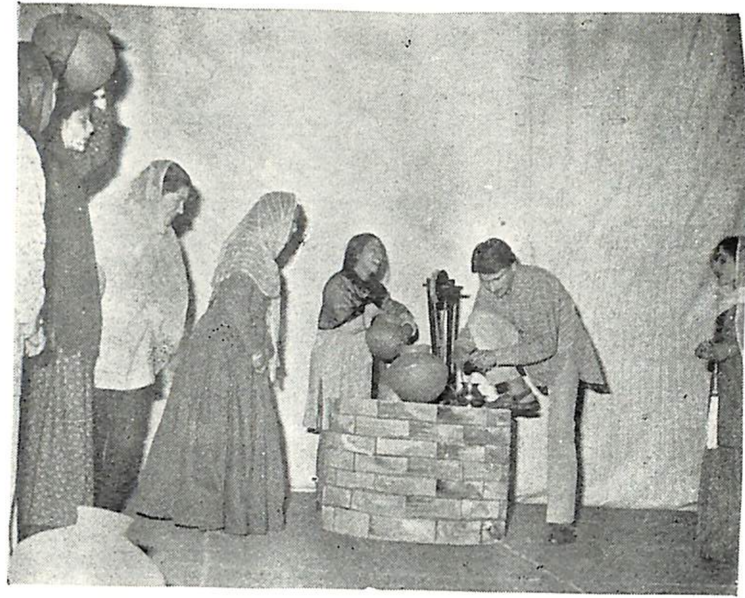
"बस बस एक ही दिन में खिला दोगी क्या ?"

इलाही और रघुनाथ



'रब बड़ा ताकतवर है।'

रघुनाथ और गाँव की युवतियाँ



''क्यों लल्ला, घरवालों से लड़कर आए हो क्या ?'

रघुनाथ और भाग्यवती



"अब तो सिखा दो 'पिराग जी' वालों को अकल"

रघुनाथ की मां : बैठो मोहिनी। ओ भगवान, कब तक ये तानें सुनती रहूंगी। कोई घर में लाहना देने आए तो इन्कार तो नहीं कर सकती न।

मोहिनी : छोड़ो इन खूसट बूढ़ियों की बातें। रस्सी जल गई पर बल अभी तक नहीं गया। एक पांव कब्र में है फिर भी शरीफों को ताने दे-दे कर उनकी खिल्लियां उड़ाना इनका धंधा है। बुढ़ापे में समय भी काटें तो कैसे? बातें करेंगी बढ़-चढ़ कर पर अन्दर से हैं खोखली। इनकी बातें सुनती रहोगी तो जीना हराम कर देंगी ये।

रघुनाथ की मां : रघु की शादी होगी तो इनको दुगना लाहना दूंगी। बग़ैर शादी के इनको कैसे दे दूं बताशा। पिछली बार गांव गई थी, देवर को कितनी बार कहा कि इनको समझाओ, रघु की शादी कर दें। अब जाने देवर, या जानें ये। लड़कियों वाले पीछे पड़े रहते हैं।

मोहिनी : रघु के बाबू जी को खुद क्यों नहीं समझातीं? अच्छा तो अब मैं भी चली। बहुत समय हो गया, फिर कभी फुर्सत से आऊंगी। **(चली जाती है।)**

रघुनाथ की मां : **(घर के कार्य के मूकाभिनय के साथ अपने आप से बात करती रहती है।)** आज बाबू जी का लेजर और उनकी छड़ी छिपा लूंगी। काम नहीं करने दूंगी। आज उनको दबाऊंगी कि पड़ोसियों की बोलियां नहीं सही जातीं। रघु की शादी हो जाती तो मुझे भी सुख मिलता और इन्हें भी।

[बाबू जी का प्रवेश। रघुनाथ की मां : आ गए आप। रघुनाथ की मां लेजर और छड़ी लेकर अन्दर जाती है। बाबू जी की आतुरता। रघु की

मां का लोटे में पानी और तौलिया लिए प्रवेश। वह हाथ धुलाती है। बाबू जी हाथ धोते हैं। 'बहुत थोड़ा पानी हाथ धोने के लिए दिया जाता है ताकि दृश्य स्थापित हो जाए।' बाबू जी पानी के छींटे मुंह तथा शरीर पर फेंकते हैं।

ऊं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

वह तौलिया देती है। वे हाथ-मुंह साफ़ करते हैं। वह चटाई लाकर बिछाती है। वे खाना खाने बैठते हैं। तौलिया घुटने पर फैलाते हैं। खाना परोसने का मूकाभिनय।]

बाबू जी : आ हा···आज तो पहाड़ी खाना बनाया है। (**नमस्कार करते और गऊ-ग्रास रखते हुए खाना खाने का मूकाभिनय करते हैं**) क्या बात है ? क्या कांगड़े की याद आई ?

रघुनाथ की मां : लो थोड़ा मदरा और लो जी।

बाबू जी : भई, वाह, मज़ा आ गया। (**खाने का मूकाभिनय**)

रघुनाथ की मां : पानी।

बाबू जी : खाना स्वादिष्ट है ! कुछ विशेष है आज ?

रघुनाथ की मां : नहीं, कुछ नहीं। लो कढ़ी और लो।

बाबू जी : बस।

[परन्तु ना-ना करते वह कढ़ी डाल ही देती है।]

रघुनाथ की मां : ओ हो, चटनी देना तो भूल ही गई। लो। लो एक फुलका

और लो।

[खाना]

चावल और दूं। (**देती है**)

बाबू जी : बस-बस, बहुत हो गया। एक ही दिन में खिला दोगी क्या ?

[बाबूजी और खाने के लिए मना कर हाथ धोने के लिए उठते हैं। रघु की मां लोटे में से पानी देकर हाथ धुलाती है। मुंह साफ करने व कुल्ला आदि करने का मूकाभिनय। तौलिये से हाथ-मुंह साफ करके तथा यथा-स्थान खूंटी पर टांगने के बाद वापस आकर फिर बैठ जाते हैं। रघु की मां बर्तन उठाने व अन्य सम्बन्धित क्रियाओं का मूकाभिनय करती रहती है।]

बाबू जी : अब तुम भी खाना खा लो न।

रघुनाथ की मां : बस, मैं नहीं खाऊंगी, भूख नहीं है।

बाबू जी : कमाल है? इतना बढ़िया खाना मेरे लिए ही बनाना था ?

रघुनाथ की मां : (**चौंक जाती है**) नहीं···थोड़ा ठहर कर खाऊंगी। (**थोड़ा बहुत काम करती रहती है।**)

बाबू जी : इन गर्मियों में रघुनाथ का ब्याह कर देंगे।

रघुनाथ की मां : हैं, आज यह कैसी सूझी ?

बाबू जी : दारसूरी से भैया की चिट्ठी आई है। बहुत कुछ बातें लिखी हैं। कहा है तुम तो परदेसी हो गए। यहां चार महीने बाद वृहस्पति सिंहस्थ हो जाएगा, फिर डेढ़-दो

वर्ष तक ब्याह नहीं होंगे। इसलिए छोटी-छोटी बच्चियों के ब्याह हो रहे हैं। वृहस्पति के सिंह के पेट में पहुंचने से पहले शायद ही कोई चार-पांच वर्ष की लड़की कुंवारी बचेगी। फिर अगर कहीं वृहस्पति शेर की दाढ़ में से जीता-जागता निकल भी आया तो न बराबर का घर मिलेगा, न जोड़ की लड़की। तुम्हें क्या है, गांव में बदनाम तो हम हो रहे हैं। मैंने अभी दो-तीन घर रोक रखे हैं। तुम जानो, अब कि मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुमसे जन्म-भर बोलने का नहीं।

रघुनाथ की मां : भैया ठीक ही तो कहते हैं।

बाबू जी : मैं भी मानता हूं कि लड़के का उन्नीसवां वर्ष है। अब के इण्टरमीडिएट तो पास हो ही जाएगा। लगता है अब हमारी एक भी न चलेगी। देवर-भौजाई जैसा नाच नचाएंगे, वैसे ही नाचना पड़ेगा। अब तक मेरी चली यही बहुत हुआ।

रघुनाथ की मां : भैया की कहो, मेरा कहना पांच बरस से जो मान रहे हो।

बाबू जी : अच्छा अब ज़िदो मत। मैंने दो महीने की छुट्टियां ली हैं। छुट्टियां मिलते ही देस चलते हैं। बच्चा को लिख दिया है कि इम्तहान देकर सीधा घर चला आ। दस-पन्द्रह दिन में आ जाएगा। तब तक हम घर भी ठीक कर लेंगे और दिन भी। अब तुम जब भी आगरे आओगी बहु को लेकर ही आओगी। विश्वास रखो। अब मैं थोड़ा काम कर लेता हूं, तुम भी खाना खा लो।

[बाबू जी पृष्ठभूमि में जाते हैं]

रघुनाथ की मां : (**मन में**) बताशे वाली बुढ़िया का लाहना तो मिटेगा।

[तेज़ी और खुशी में खाना खाने का मूकाभिनय]

बाबू जी : (मंच पर आकर) अरी सुनती हो, वह मेरा लैजर और मेरी छड़ी कहां रख दी ?

रघुनाथ की मां : छड़ी पड़ी है वहीं अन्दर वाले कमरे के कोने में और लैजर पड़ा है तकिए के नीचे।

[प्रकाश बुझता है। पृष्ठभूमि में स्टेशन का वातावरण। गाड़ी की छुकछुक की आवाज़। यात्रियों का शोर। दूध आदि बेचने की आवाज़ें—
'कूजे में दूध पियो', 'बेसन की बरफी', 'शक्करपारे लो—सेवियां लो', 'दूध के बने पेड़े', 'आओ भाई जी', 'आओ बहन जी'।
'आधा सेर पेड़े दो भाई।' 'दो पाव दूध दो।' 'चार पैसे की सेवियां' आदि आवाज़े सम्मिलित। प्रकाश का एक बहुत बड़ा वृत्त। रघुनाथ और टट्टू का मालिक इलाही दिखाई पड़ते हैं। यात्रियों का आना-जाना लगा हुआ है।]

इलाही : यह सारा इलाका घराठनी ही कहलाता है मालिक। कभी यहां सुनसान बियाबान था। बब्बर शेर रहते थे उस जंगल में। जब फिरंगी आए तो वो यहां रेल ले आए।

रघुनाथ : बहुत ही सुन्दर स्थान है। चूने के ढेर की तरह चमकते पहाड़। जी करता है यहीं बैठ जाऊं। प्रयाग से कितना अलग दृश्य है।

इलाही : बहुत दूर जाना है बाछा। वह सामने वाला मोड़ दिख रहा है न, वहां पहुंचते-पहुंचते भी दो घण्टे लग

जाएंगे। इन पहाड़ों में आदमी की आधी ज़िन्दगी चलते चलते बीत जाती है बाबू।

रघुनाथ : रास्ता बहुत भयानक लग रहा है। ज़रा सम्हलकर ले जाना मुझे। कितनी संकरी पगडंडी है। ज़रा सा पैर फिसला तो गए खड्ड में। मुझे तो डर लगता है बाबा।

इलाही : डरने की कोई बात नहीं। मेरा मोती कोई ऐसा वैसा घोड़ा नहीं। इसको पूरा रियाज़ है इन रास्तों पर चलने का। यहां मैं एक बारात में आ चुका हूं। वह बारात स्टेशन से कलेटा तक गई थी। हमारे साथ नौसिखिए बाराती थे। पहाड़ों में चलने का उन्हें तजुर्बा नहीं था। बहुत सों के पांव में छाले पड़ गए पर मेरा मोती पठान की तरह दुलकियां मारता हुआ अपनी मंज़िल तक पहुंच गया। उसकी पीठ पर एक मोटे से पंडित जी सवार थे।

[हंसते हैं।]

रघुनाथ : इलाही भाई यहां का दूध बड़ा स्वादिष्ट है। आगरे में भी कभी इतना बढ़िया दूध नहीं पिया मैंने।

इलाही : घराठनी के इलाके में बहुत बढ़िया दूध होता है। यहां की भैंसें जंगली जड़ी-बूटियां जो खाती हैं और फिर कूजे में दूध का मज़ा ही कुछ और है बाछा।

एक यात्री : तेला गांव का रास्ता किधर है मित्रों। मैं पखला हूं।

इलाही : स्टेशन के परली तरफ़। वह जहां बड़ का बहुत बड़ा पेड़ है, उसके पास से ही एक पगडंडी तेला गांव को जाती है। यहां से १४ कोस होगा।

यात्री : उफ ! बहुत दूर है।

इलाही : टट्टू-वट्टू चाहिए तो बोलो। सामने तबेला है।

यात्री : नहीं मैं पैदल ही जाऊंगा।

रघुनाथ : और अब कितनी देर खड़े रहेंगे यहां मियां?

इलाही : अरे मोती ने तो अपना चारा कभी का खा लिया है। पानी भी पिला दिया है। बस आपका ही इन्तज़ार है। आपका हुक्म हो तो हम कूच करें बड़े बाबू।

रघुनाथ : चलो। चलना ही ठीक है। समय पर पहुंच जाएंगे।

इलाही : चलिए। मैं तबेले से टट्टू को बाहर ले आऊं।

[पृष्ठभूमि में प्रस्थान। सीटी की आवाज़। मंच के दूसरी ओर से एक वृद्ध और उसकी लड़की का प्रवेश।]

वृद्ध : जल्दी करो, जल्दी करो। गाड़ी छूट रही है।

[पृष्ठभूमि में स्टेशन की ओर प्रस्थान। प्रकाश बुझता है। पृष्ठभूमि से ही 'जल्दी करो-जल्दी करो' की आवाजें। गाड़ी के चलने और सीटी बजने की आवाज़। कुछ क्षण के उपरान्त प्रकाश का एक वृत्त। रघुनाथ और इलाही खड़े हैं।]

इलाही : क्यों हुआ न मालूम अब कि यह पहाड़ी मोड़ कैसे होते हैं। चक्कर पर चक्कर। इनमें चलते-चलते आदमी घनचक्कर बन जाता है हुज़ूर। लाहौल विला कुव्वत।

रघुनाथ : अभी और कितना रह गया है रास्ता?

इलाही : थोड़ी देर आराम करो बाछा। टट्टू को मैंने पेड़ के तने से बांध दिया है। वह थोड़ा सा चुग्गा खाएगा। पानी तो आपने पी ही लिया है उस बावड़ी का। थोड़ी देर सुस्ता लो। उतने में मैं चिलम फूंक लूं। बड़ी तलब लगी

है। आप बुरा तो नहीं मानते बाछा ? तम्बाकू के धूंए से परहेज़ तो नहीं है न ?

रघुनाथ : नहीं नहीं तुम आराम से पियो। हमारे घरों में भी हुक्का पिया जाता है। हमारे दादा पिया करते थे।

[बैठते हैं। इलाही चिलम पीता है।]

रघुनाथ : तुम दिलचस्प आदमी मालूम होते हो। कोई बात ही बताओ जिससे कि समय ही कट जाए।

इलाही : मेरी बातों में आपका क्या जी लगेगा। ग़रीबों की भी कोई ज़िन्दगी होती है। रब रोटी देता है। दिन-भर मेहनत करता हूं। रात दो चुटकी आटा फांक लेता हूं और इस नीली छत के नीचे पड़ा रहता हूं।

रघुनाथ : ग़रीब ! यह शब्द तुमने क्यों कहा ? भारतवर्ष ग़रीबों के सिर पर ही तो खड़ा है। वास्तव में इस देश की ग़रीब जनता ही तो वह शेष नाग है जिसके सिर पर हमारा यह संसार टिका है। यह शब्द फिर न कहना प्यारे मित्र।

इलाही : बाछा अपनी बात कहां-कहां से शुरू करूं, कहां-कहां खतम करूं ? अब उनका मोल क्या ? दुनिया एक गर्दिश है और कुछ नहीं।

रघुनाथ : इस यात्रा में तुम मुझे मिले, संयोग की बात है। कहां तुम मुसलमान और मैं हिन्दू। लेकिन तुम्हारे जैसा नेक आदमी मैंने पहले कभी नहीं देखा।

इलाही : बाछा वह तुम जैसे सांई लोग ही हैं जिनकी बरकत से मैं हज कर आया। ख्वाजा का उर्स देख आया। हमारे मज़हब में इनकी बड़ी अहमियत है।

रघुनाथ : तुम जानते हो मैं किस स्थान से आया हूं ? प्रयाग जी

का नाम सुना है ?

इलाही : हां सुना तो है। वही जिसका दूसरा नाम इलाहाबाद भी है।

रघुनाथ : हां वही स्थान हिन्दुओं का वह पावन तीर्थ स्थल है तुम्हारे मक्का-मदीना की तरह।

इलाही : बाछा मेरा काम टट्टू चलाना नहीं था। लेकिन अब तो इस मोती की कमाई खाता हूं। सवारी ले जाता हूं, ले आता हूं। ढ़ाई मण कणक और दो पौली बच जाती है। तीन वेले नमाज़ पढ़ लेता हूं और मुझे क्या चाहिए।

रघुनाथ : तुम्हारा घर-बार ज़मीन-जायदाद भी तो होगी ?

इलाही : रब की मरज़ी बाछा, रब की मरज़ी। वैसे मेरा अपना घर था। काफ़ी ज़मीन थी सिंहों के वक़्त की। नाते-पड़ोसियों में मेरा नाम था। क्या बताऊं बाबू तुम मानोगे नहीं, मैं और मेरी बीवी धामपुर के नवाब के यहां बावर्ची का काम करते थे। मैं था नवाब के साथ और मेरी घर वाली नवाब के हरम में खाना बनाती थी। एक रात खाना बना खिला के जैसे ही अपनी मंजड़ी पर सोया कि मेरे मौला ने मुझे आवाज़ दी—'लाही-लाही जा हज कर आ, तू मेरी पुकार नहीं सुनता जा हज कर आ।' मैंने जान लिया कि मुझे इलहाम हुआ है, मेरा मौला मुझे बुलाता है। आवाज़ आई 'तू चल पड़, गफ़लत मत कर, मैं तेरे नाल हूं। तेरा बेड़ा पार करूंगा।' रब बड़ा ताकतवर है बाछा। ग़रीबों की सुनता है। उसकी आवाज़ पे मैंने कम्बल उठाया और आधी रात को ही चल पड़ा। मैं रातों चला, दिनों चला। भीख मांगते-मांगते पहुंचा बम्बई, पैदल बाछा। पल्ले टका नहीं था। एक हिन्दू भाई ने मुझे टिकट ले दिया और जहाज़ पर काफ़िले के साथ मक्के की ओर बढ़

गया।

रघुनाथ : तो क्या तुमने अपनी घर वाली को भी नहीं बताया कि तुम जा रहे हो ?

इलाही : आवाज़ में इतनी कशश थी बाछा कि मैं घर-बार, जोरु-ज़ेवर, जगह-ज़मीन सब भूल गया। मैंने सोचा यह सब बुलबले हैं। 'लाही तू हज कर आ।'

रघुनाथ : फिर क्या हुआ ?

इलाही : इधर मैं हज को चल पड़ा और उधर जानते हो क्या हुआ बाछा। नवाब जब सवेरे उठा तो उसने नाश्ता मांगा। नौकरों से मेरा पता पूछा। मेरी गैर-हाज़री पर उसे गुस्सा आया, वह जल उठा। उसने मेरा घर फुंकवा दिया। मेरी ज़मीन अपने रखैल के भाई को दे दी। बीवी को लौंडी बनाया। (आवाज़ भर्रा जाती है, रोता है) मैं उसका क्या ले गया था बाछा ? बताओ बाछा ? अपना कम्बल ही तो ले गया था। भला मेरा मौला बुलावे और मैं न जाऊं ?

रघुनाथ : (रुआंसे स्वर में) तुमने तो बड़े कष्ट झेले हैं इलाही।

इलाही : रब की मरज़ी बाबू। सब उसी के किए से होता है। हज का आगे का किस्सा सुनाऊं। छः महीने लगे हज में। जब जहाज़ लौट रहा था तो बीच समन्दर में कप्तान रास्ता भूल गया। जहाज़ चट्टान से टकरा गया। हमने समझा हम मर जाएंगे। इतने में छोटी-छोटी किश्तियां कप्तान ने पानी में उतारीं और हाजियों को बैठा कर गहरे समन्दर में किस्मत आज़माने के लिए छोड़ दिया। हमको किश्तियों में बैठाया मगर मर्द का बच्चा वह कप्तान अपनी जगह से नहीं हिला। जहाज़ के साथ ही डूब गया। सुबह के झुटपटे में देखा कि दो किश्तियाँ बह

रही हैं। न जहाज़ है और न साथ की दूसरी किश्तियां। पता नहीं हम किधर जा रहे थे। नागिन की तरह लहरें हमारा पीछा कर रही थीं। एक लमहा बीतता हम ख़ैर मनाते। पर मेरे मालिक ने करम किया, मेरे मौला ने मेरा बेड़ा पार किया। तीन दिन तीन रात गहरे समन्दर में ज़िन्दगी और मौत के हिचकोले खाने के बाद चौथे दिन हमें एक माल जहाज़ ने इमदाद दी और तब कहीं छठे दिन कराची पहुंचे। नमाज़ पढ़ी। बाद में किसी पढ़े-लिखे ने बताया कि अख़बार में ३०० हाजियों के मरने की खबर छपी है। याह मेरे मौला !

रघुनाथ : ईश्वर बलवान है, इलाही भाई। विधाता की चाल को कोई नहीं रोक सकता।

इलाही : आप क्या समझते हो कि यह दर्द भरी दास्तान यहीं ख़त्म हो गयी ? रब मेहर करे। मैंने कुछ पाप किए होंगे मगर हज ने बचा लिया।

रघुनाथ : नवाब की बात तो तुम अधूरी ही छोड़ गए।

इलाही : वह भी सुना रहा हूँ बाछा। वहीं आता हूं अब। उधर नवाब के यहां होनी ने एक अलग ही चाल चली। मेरे जाने के पन्द्रहवें दिन नवाब के हरम में से उसकी किसी रखैल की सोने की अंगूठी खो गई। उसे मेरी घर वाली पर शक हुआ। जब उसने तफ़तीश की तो बोली मेरा कौन सा घर वाला बैठा है यहाँ जिसके पास अंगूठी ले जाऊंगी। मगर उस उल्लू के चर्खे ने एक न सुनी। उसके सिर पर तो फ़तूर सवार था। बेंत मारने लगा। इतने मारे कि वह अधमरी हो गई। आज भी जब मैं घर वाली की पीठ पर नीले निशानों की गुच्छियां देखता

हूं तो खून खौलता है। तौबा! तौबा! रब तूने उस उल्लू का गला घोंटने को मुझे यहां क्यों न रखा। घर वाली को नवाब ने बाहर फैंकवा दिया था हुजूर। तीसरे दिन वह अधमरी लाश घिसटती-घिसटती किसी तरह अपने भाई के यहां पहुंची।

रघुनाथ : (रुंधे गले से) तुमने फ़रियाद नहीं की ? तुम अदालत में जाते। क्यों नहीं गए ?

इलाही : कचहरियां ग़रीबों के लिए नहीं हैं, बाछा। वह तो सेठों और नवाबों की बपौती है। ग़रीबों की सुनवाई कचहरियों में नहीं होती। हम ग़रीबों की फ़रियाद मेरा मौला, मेरा मालिक, वही सुनता है। जानते हो आगे क्या हुआ ? जब वह मेरी बीवी पर एक भूखे बाज़ की तरह बरस रहा था तो उसके हाथ की अंगुली में बेंत की सली चुभ गयी। अंगुली सड़ गयी थी और लहू में ज़हर भर गया था। नवाब पन्द्रहवें दिन मर गया। हज से आकर मैंने सारा हाल सुना। मैं रोया, चीखा, चिल्लाया। साले के यहां पहुंचा। उसने जो रुपए दिए, उससे मैंने एक टट्टू मोल लिया मेरे मालिक। यही मोती। यही मेरा प्यारा मोती है। इस जानवर को लेकर मैं पहाड़ चला आया था। आदमी से जानवर बहुत अच्छा है बाबू। पहाड़ भी बहुत अच्छे हैं। यहां के आदमी रब से डरते हैं। रब का नाम बड़ा है।

चलो बाछा चलें। मैंने तो आपका बहुत वक़्त बर्बाद कर दिया।

रघुनाथ : कभी प्रयाग आओ तो मुझसे मिलना। यह मेरा पता है। **(जेब से डायरी और पैन निकालता है और पता लिख कर देता है।)**

इलाही : चक्कर लग गया तो ज़रूर आऊंगा बड़े बाबू।

रघुनाथ : चलो अब चलें।

[खड़े होते हैं।]

इलाही : घबराइए नहीं, अब आप का गांव थोड़ी ही दूर रह गया है। मैं वहां गया हूँ। एक ज़मींदार को जानता भी हूं। रास्ते में दो-ढ़ाई कोस इधर सड़क पर एक कुंआ है। वहीं थोड़ी देर आराम करेंगे। मैं घोड़े को निहारी दे दूंगा और आप पानी-वानी पी लेना। हम धूप ढलते ही चल देंगे। आप फ़िक्र न करें। बात ही बात में मैं आपको घर पहुंचा दूंगा।

[प्रकाश बुझता है। पृष्ठभूमि में 'कुंजू-चंचलो' की पंक्तियां:—

कपड़े धोआं छम छम रोआं कुंजुआ विच बटण निशानी हो
बटणा दा गम न तू करे चंचलो चम्बे चान्दी भतेरा हो
राती ओ बराती मत इन्दा कुंजुआ बैरी भरीयाँ बंदूकां हो
मिलणे ता आओणा जरूर चंचलो कढा बे निशानी हो

[मंच पर प्रकाश का एक बड़ा वृत्त। कुंआ नज़र आ रहा है। पांच-छः स्त्रियां पानी भरती हुई। कुछेक पानी की गागरें ले जा रही हैं। एक चुलबुली सी कन्या भी है इन स्त्रियों के साथ। स्त्रियों से सहमा रघुनाथ लोटा और डोर लिए कुंए से पानी खींचने लगता है। अनुभव न होने के कारण लोटे का संतुलन नहीं बन पा रहा। सारी डोर कुंए पर बखेर दी है। यह असफल क्रिया रघुनाथ को उपहास का केन्द्र बना देती है।]

पहली स्त्री : यह कौन है री ? यहां क्यों आया है ? ज़रा पूछो तो।

दूसरी स्त्री : पटवारी है। देखती नहीं, डोर को पैमाइश की जरीब की तरह फैला रहा है।

तीसरी स्त्री : ना री बहन, पटवारी नहीं बाजीगर है, बाजीगर। अभी देखना हाथ-पांव बांध कर धप्प से पानी में कूद पड़ेगा और फिर सूखे-का-सूखा बाहर निकल आएगा।

चौथी स्त्री : क्यों लल्ला, घर वालों से लड़कर आए हो क्या ?

पांचवी स्त्री : कुंए में दवाई डालोगे ? अरे भैया इस गांव में तो कोई बीमारी-वीमारी नहीं है।

कन्या : मामी न तो यह जंचता है कोई दवाई डालने वाला इन्सपैक्टर और न लगता है कोई पटवारी। ढपोरसंख है, अनाड़ी। लोटे में फांसा देना नहीं आता। (**रघुनाथ से**) कहीं मेरे घड़े को ही कुंए में न डाल देना। तुमने तो कुंए की सारी मुंडेर ही रोक ली। (**अपना घड़ा उठा कर किनारे रख देती है।**)

पहली स्त्री : (**रघुनाथ से**) भाई तुम क्या करोगे ?

कन्या : (**बात काट कर**) कुंए को बांधेंगे मामी।

पहली स्त्री : अरे बोल तो।

कन्या : मां ने सिखाया नहीं। बोलेगा कैसे ?

[संकोच, प्यास, लज्जा और घबराहट से रघुनाथ का गला रुंध गया है। खांसकर वह गला साफ़ करता है।]

पहली स्त्री : (**आगे आकर और डोर उठाकर**) चाहते क्या हो ? बोलते क्यों नहीं?

कन्या : फारसी बोलेंगे।

रघुनाथ : (**आंखें ऊंची करके तथा कुंए की ओर मुंह फेर कर**)

मुझे पानी पीना है। लोटे से निकाल रहा था, निकाल लूंगा।

कन्या : परसों तक निकाल ही लोगे, हैं, न ?

पहली स्त्री : तो हम पानी पिला दें। त...त...त...त...मुझे तो इस बेचारे पर बड़ा तरस आ रहा है। ला भागो गगरी उठा ला। इसको पानी पिला ही देते हैं।

कन्या : (**गगरी उठा कर लाती** है) ले मामी के पालतू, पी ले पानी, पानी पी ले, शरमा मत। तेरी बहू से नहीं कहूंगी कि तुझे पानी खींचना नहीं आता।

[सब स्त्रियां खिल-खिला कर हंस पड़ती हैं तथा रघुनाथ झेंप जाता है।]

रघुनाथ : नहीं-नहीं, मुझें नहीं चाहिए आपका पानी। मैं तो खुद ही पी लूंगा।

कन्या : कुंए में कूदोगे ? ऐसे तो नहीं पी सकते।

[स्त्रियों की खिलखिलाहट। रघुनाथ कन्या को देखता है। फिर अपनी आंखें लज्जा से नीचे कर लेता है।]

पहली स्त्री : पानी पी लो न जी, लड़की गागर लेकर खड़ी है।

[रघुनाथ हाथ धोकर ओक से पानी पीने लगता है। आधा पी चुकने के बाद सांस लेते हुए आंखें ऊंची करके कन्या की ओर देखता है। कन्या मुंह बनाती है और रघुनाथ की हंसी फूट पड़ती है।

नाक में पानी चढ़ जाता है और उसके 'गलसूंड' पड़ जाती है ।]

पहली स्त्री : तुझे तो रात दिन ऊतपन ही सूझता है । गलसूंड चला गया है इन्हें । ऐसी हंसी भी किस काम की । लो मैं पानी पिलाती हूं ।

कन्या : दूध पिला दो, बहुत देर हुई । आँसू भी पोंछ दो ।

[रघुनाथ उस स्त्री से जल लेकर मुंह धोता है और पानी पीता है ।]

रघुनाथ : **(धीरे से)** बस जी, बस ।

कन्या : अब तो यह खुद ही निकाल लेंगे ।

[रघुनाथ मुंह पोंछता है ।]

पहली स्त्री : कहां रहते हो ?

रघुनाथ : आगरे ।

पहली स्त्री : इधर कहां जाओगे ?

कन्या : **(बीच ही में)** शिकारपुर जा रहे हैं मामी शिकारपुर । वहां इसी जैसे लोगों की धर्मशाला है ।

[स्त्रियों की खिलखिलाहट ।]

रघुनाथ : दारसूरी जाना है जी । मैं पहले कभी इधर आया नहीं । कितनी दूर है? कब तक पहुंच जाऊंगा ?

कन्या : यही पन्द्रह-बीस दिन में । तीन-चार सौ कोस तो होगा ।

पहली स्त्री : छिः, यही दो-ढाई कोस भर है । अभी घण्टे भर में

पहुंच जाओगे।

रघुनाथ : रास्ता सीधा ही है न ?

कन्या : नहीं तो। बाएं हाथ को मुड़ कर एक बड़ोटे के नीचे दाहिने हाथ को मुड़ने के पीछे सातवें पत्थर पर फिर बाएं मुड़ जाना, आगे सीधे जाकर कहीं न मुड़ना। सबसे आगे एक गीदड़ की गुफा है, उससे उत्तर को बाड़ उलांघ कर चले जाना।

पहली स्त्री : ऐ छोकरी तू बहुत सिर चढ़ गई है। चिकर-चिकर करती ही जाती है। (**रघुनाथ से**) इसकी बात मत सुनो। मैं बताती हूं, एक ही रास्ता है। सामने नदी आएगी, 'परले पार' बाएं हाथ को गांव है।

कन्या : नदी से भी यों ही फांसा निकालकर पानी निकालना।

पहली स्त्री : क्या उस गांव में डाक-बाबू होकर आए हो ?

रघुनाथ : नहीं, मैं तो प्रयाग में पढ़ता हूं।

कन्या : ओ हो, पिराग जी में पढ़ते हैं। कुंए में से पानी निकालने की विद्या नहीं पढ़ते होंगे।

पहली स्त्री : ऐ लड़की चुप कर, ज्यादा बक-बक करना ठीक नहीं होता। इसलिए लाई हूं मैं तुझे ननिहाल ? ज़बान को लगाम दे। पखलों से ऐसी बातें नहीं करते। तू-तड़ाक से बात करना लड़कियों को शोभा नहीं देता।

[महिला-मण्डल हंसता है। रघुनाथ झेंपा-सा खड़ा है।]

कन्या : क्यों जी, पिराग जी में क्या अक्कल भी बिकती है ?

रघुनाथ : (**मुँह फेर लेता है**) उफ़ ! हे ईश्वर !

पहली स्त्री : तो गांव में क्या करने जा रहे हो ?

कन्या : कमाने-खाने, गाल-बजाने, कुएं में छलांग लगाने···डोरी लोटे को कमर में बांधकर यशोदा मैया से मक्खन खाने।

पहली स्त्री : तेरी कैंची नहीं बन्द होती री? भई, ये लड़की तो पागल हो जाएगी। इसकी बातें बुरी न मानना बेटा। यह तो जनम से ही ऐसी है पगली। किसके घर जाना है बेटा?

[इलाही का प्रवेश। चिलम पीता हुआ आता है। खांसता है।]

रघुनाथ : मैं वहां के बाबू शोभाराम जी का लड़का हूं।

पहली स्त्री : अच्छा, अच्छा, तो क्या तुम्हारा ही ब्याह है?

[रघुनाथ सिर नीचा कर लेता है।]

कन्या : धत् तेरे की। तेरी कुड़माई हो गई? मामी, मामी, मुझे भी अपने नए पालतू के ब्याह में ले जाना। बड़ा ब्याहने चला है। उधर पेड़ के नीचे घोड़ी बंधी है, और यह जो चिलम वाला है न यह नाना बनेगा। वाह जी वाह, ऐसे बुढ्ढू के आगे भी कोई लहंगा पसारेगी।

[स्त्री लड़की की ओर झपटती है। लड़की गगरी उठाकर चली जाती है। स्त्री उसके पीछे-पीछे जाती है और साथ में अन्य महिलाएं भी एक अट्टहास करने के बाद प्रस्थान कर देती हैं।]

इलाही : कौन थी बाछा ये ? कोई खास ही जान-पहचान की मालूम होती है आपकी। पानी नहीं पिया ? मेरी तो चिलम भी खत्म होने को आई।

रघुनाथ : पानी क्या पीता इलाही। इन्होंने तो मुझे नहला ही दिया। अरे क्या बताऊं मरते-मरते बचा। ऐसा पानी पिलाया उस कन्या ने कि अन्दर की सांस अन्दर और बाहर की बाहर।

इलाही : अच्छा तो यह बात है। (हंसता है) पनघट का चक्कर ही ऐसा है। ज़रा सी छेड़ हुई कि मधुमक्खियां टूट पड़ेंगी। शहद का छत्ता होता है पनघट बाछा।

रघुनाथ : क्या शहर और क्या गांव ! ये गांव वालियां तो उनसे भी एक स्त्री ऊपर ही निकली। भगवान बचाए इन औरतों से। मैंने तो न पानी मांगा और न रास्ता पूछा। इन्होंने मेरी जो खिल्लियां उड़ानी शुरू कीं, तुम न आए होते तो मैं इनकी घात से न बच पाता। तुम्हें देखते ही रफ़ूचक्कर हो गयीं। बुद्धू समझती हैं मुझे।

इलाही : (हंसता है) अरे बाबू तुमने हातिमताई की कहानी सुनी है। हातिमताई जैसा समझदार आदमी भी इनसे हार गया था।

रघुनाथ : ठीक कहा है तुमने। हमारे संस्कृत में भी एक श्लोक ऐसा ही है—

अश्वप्लुत वासव गर्जितं स्त्रियांच चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्।
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥

मुझसे ऐसा व्यवहार कर रही थी जैसे मैं इनके गांव में कोई नया-नवेला दूल्हा आ गया होऊं।

इलाही : औरतों से ज़िरह कौन करे ? चलो अपना रास्ता पकड़ें। टट्टू भी तैयार है। सोचता हूं आपको छोड़ दूं फिर रामपुर के रास्ते मुकेरियां पहुंच जाऊंगा। वहां ढुलाई का एक ठेका है। या अल्लाह-या मेरे मालिक।

[प्रकाश बुझता है। कुछ क्षण के उपरान्त प्रकाश का एक दूसरा वृत्त। मूढ़ों पर बाबू जी और रघुनाथ की मां बैठी हैं। बाबूजी और रघुनाथ की मां के पीछे दो मूढ़ों के बीच खड़े हैं रघुनाथ के चाचा गंगाराम। पण्डित जी भूमि पर बैठकर जन्म-पत्रियां देख रहे हैं।]

बाबू जी : क्यों पण्डित जी, कहीं कुछ बात बनती है ?

पण्डित जी : 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' पर हड़ताल नहीं लग सकती। भई कीरती गांव की इस लड़की की कुण्डली में तो शुक्र छिप गया है, उल्टा अष्टमेष गर्भाष्टम में बैठा है और खक्खल गांव की इस लड़की की कुण्डली में वृहस्पति का भगना ठीक नहीं है। भाई कुण्डली के आधार पर इन दोनों लड़कियों में से किसी एक के साथ रिश्ता तय नहीं हो सकता।

बाबू जी : पंडित जी, फिर भी तो दो-तीन घर ही रह गए हैं बाकी।

पंडित जी : हां ! इनमें से किसी एक के भी रिश्ता तय हो सकता है। इनके भागेश भी अच्छा है और वृहस्पति भी। लड़की पसन्द कर लो ताकि शादी के मुहूर्त की तिथि निकाल ली जाए, वर्ना ढ़ाई साल तक फिर रिश्ते-विवाह की बात मत सोचना, हां।

रघुनाथ की मां : पण्डित जी, अब तो इन लड़कियों को देखकर तीन-चार

दिन में बात पक्की कर ही लेते हैं।

पंडित जी : तो घर देखकर निर्णय ले लो। कल संक्रान्ति है दिन अच्छा है। अच्छा बहन जी मुझे अनुमति दो। इन लड़कियों के घर भी सूचना दे दूं।

रघुनाथ की माँ : पण्डित जी दूध पीते जाइए। हमारे यहां से कोई भी ब्राह्मण बिना कुछ खाए नहीं जा सकता।

पंडित जी : अगर आप आग्रह करती हैं तो दूध तो पी लूंगा बहनजी। रघुनाथ प्रसाद त्रिवेदी नज़र नहीं आया।

[मां अन्दर जाती हैं।]

बाबू जी : वह तो नदी की ओर नहाने-धोने, दाड़ी बनाने गया है आज।

[प्रकाश बुझता है तथा साथ ही प्रकाश का एक वृत्त। कन्या ने अपनी नाक दुपट्टे में छिपा रखी है। साथ में रघुनाथ सहमा सा खड़ा है।]

कन्या : वाह, अच्छे मर्द हो। बड़े बहादुर हो। स्त्रियों पर हाथ उठाया करते हैं?

[रघुनाथ चुप]

वाह पिराग जी में खूब इलम पढ़ा। स्त्रियों पर वहां हाथ उठाते होंगे।

रघुनाथ : तुम भी तो नकलची बन्दर की तरह मेरा मज़ाक उड़ा रही थीं। मैं उस्तरे से दाढ़ी बना रहा था तो तुम मेरी नकल उतार रही थीं। चिढ़ा रही थीं ताकि मुझे क्रोध

आए और मैं तुम पर बरस पड़ूं। नदी के किनारे तुम क्यों आईं? तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो? कुएं पर पानी पिलाने और मज़ाक उड़ाने के बाद भी तुम्हारा जी नहीं भरा? मैं कब चाहता था कि स्त्री पर हाथ उठाऊं। तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो?

कन्या : क्या पीछे पड़ने का यही इनाम दे रहे हैं आप?

रघुनाथ : मुझसे बड़ी भूल हो गई। मुझे पता नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूं। मेरा सिर ठिकाने नहीं है। मुझे चक्कर आ रहा है।

कन्या : चक्कर आएंगे। और चक्कर आएंगे। आएंगे क्यों नहीं? स्त्रियों पर हाथ नहीं चलाया करते। तुम घोंघे हो, बिल्कुल घोंघे। स्त्रियों से झेंपते हो। मैं चाहती तो तुम्हें सबके सामने बे-इज्ज़त कर देती। पर नहीं मैं पुरुषों का अपमान नहीं कर सकती। आखिर पुरुष पुरुष होता है। एक स्त्री उसका मुक़ाबला कैसे कर सकती है।

[रघुनाथ में करुणा का भाव।]

रघुनाथ : क्या नाम है तुम्हारा?

कन्या : भागवन्ती।

रघुनाथ : रहती कहां हो?

भाग्यवन्ती : मामी के पास, वही जिसने तुम्हें कुएं पर पानी पिलाया था। याद है न?

[चुप्पी]

रघुनाथ : अच्छा यह बताओ, तुम्हारे भेजे में यह बात कहां से

टपक पड़ी कि उस दिन जो टट्टू वाला स्टेशन से मेरा सामान लाया था इलाही, वह मेरा नाना है ? और यह क्यों कहा था कि इस बुड्ढ़े के आगे कौन लहंगा पसारेगी ? तुमने अपने व्यंग्य बाण से मेरे मर्म-स्थल को बेध दिया है। भाग्यवन्ती मैं तुम्हें कभी छोड़ूंगा नहीं। पानी में भी नहीं छोड़ूंगा।

भाग्यवन्ती : (**हंसता है**) बड़े अहमक हो। पानी में से मैंने तुम्हें निकाला वरना डूब जाते। अब बताओ तुम बुड्ढ़े नहीं तो और क्या हो ? तुम्हें पिराग जी में तैरना भी नहीं आया।

रघुनाथ : नदी से निकाला, बड़ी कृपा की। एक बात बताओ उस दिन पानी पीते-पीते जब मुझे 'गलसूंड' पड़ गई थी तब तुमने मेरा मज़ाक़ क्यों उड़ाया ? आज जब अचानक नदी की तेज़ धार में मेरा पांव फिसल गया तो तुम मुझे बचाने क्यों आईं ? तुम डूबने देती, कोई न कोई तो बचा ही लेता। सच सच बताओ, तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ?

भाग्यवन्ती : तुम्हें आदमी बनाने के लिए।

रघुनाथ : तो क्या तुम मुझे पशु समझती हो ? शिष्टता मैंने नहीं तुमने तोड़ी है। तुम जाहिल हो, गंवार !

भाग्यवन्ती : गंवार ? ठीक है गंवार हूं। गांव की हूं। अनपढ़ हूं। मेरा बर्ताव जो तुम्हें बुरा लगा है तो अपने इस किए का (**नाक की ओर इशारा करती है**)फल भी मैंने पा लिया है। आज अपनी इस उम्र में पहली बार किसी मर्द ने घूंसा लगाया है। मेरा खून बहा है, मैंने फल पा लिया है।

रघुनाथ : तुम मेरी नकलें न उतारतीं, कंकर फेंककर मेरा शीशा न तोड़ती, मेरी दाड़ी बनाने का सामान नदी में न

फेंकती तो मैं तुम्हारे पीछे क्यों भागता ?

भाग्यवन्ती : अगर यह न होता तो तुम नदी में कैसे गिरते और मैं तुम्हें कैसे निकालती।

रघुनाथ : बुर्ज़ुर्गों ने कहा है शहर के लम्बे घूंघटों के नीचे जितना पाप होता है, उसका दसवां हिस्सा भी गाँवों में नहीं होता। उस दिन का कुएं पर का ठट्ठा-हंसी-मज़ाक और आज की यह तकरार, यह सब शहरों में कहां ?

भाग्यवन्ती : तुम तो शहर में रहते हो, वहां क्या-क्या होता है ?

रघुनाथ : वहां पर ? वहां पर गंगा-जमना का संगम है प्रयाग जी में। रेलगाड़ी का बहुत बड़ा पुल है गंगा जी पर, मुगल बादशाह अकबर का मशहूर किला है और आगरा में है ताज़महल।

भाग्यवन्ती : मैदानों में क्या गांव नहीं होते ?

रघुनाथ : होते हैं। शहरों से दूर। एक बार की बात है कि मैं अपने नाना के साथ जोधपुर गया था। एक गांव में भी गए हम। नाम था लोहगढ़। एक स्त्री ऊंट पर कहीं जा रही थी और आस-पास के खेतों में काम करने वाले लोग उसे 'मामा जी ! मामा जी !' कहकर चिढ़ा रहे थे। नाना जी ने बताया कि लोग चाहे कितना ही चिढ़ाते रहें, ऊंट पर बैठी स्त्रियां कभी चिढ़ती नहीं। तुम्हें मेरी बात अच्छी नहीं लगी ?

भाग्यवन्ती : मुल्क मुल्क की बातें हैं, मैं गंवार क्या समझूंगी। एक सलाह दूं।

रघुनाथ : क्या ?

भाग्यवन्ती : कल से नदी नहाने मत जाना।

रघुनाथ : क्यों ?

भाग्यवन्ती : गोते खाओगे तो बचाने वाला भी नहीं मिलेगा। गांव भी दूर है।

रघुनाथ : अब कोई मेरी जान बचाए तो भी मैं कभी उसका पीछा नहीं करूंगा, दो गाली भी सुन लूंगा।

भाग्यवन्ती : मैं यह बात, इसलिए कह रही हूं कि आज मैं अपने पिता के यहां जाऊंगी। यहां से दूर है मेरा गांव। मैं अब तुम्हें यहां नहीं मिलूंगी।

रघुनाथ : कहां है तुम्हारा घर ?

भाग्यवन्ती : वहीं, जहां अनाड़ियों के डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।

रघुनाथ : हूं। फिर वही बात। तो वहां पर चिढ़ाने वालों के लिए रास्ता भी नहीं होगा ?

भाग्यवन्ती : ऊं-हूं, यहां जो मैं आपके हाथ आ गई।

रघुनाथ : नहीं तो।

भाग्यवन्ती : जो कांटा न लगता, कसम ज्वाला जी की, पिराग जी तक भी दौड़ते तो हाथ न आती।

रघुनाथ : कांटा ! कांटा कैसा ?

भाग्यवन्ती : यह देखो।

[रघुनाथ देखता है कि उसके दाहिने पैर के तलवे में एक कांटा चुभा हुआ है।]

रघुनाथ : ओफ् ! यह सब मेरे कारण ही हुआ है। ज़रा दिखाओ तो।

[कन्या के सहारे वह घुटने के बल बैठता है। उनका पैर खींचकर रूमाल से धूल झाड़कर कांटे को देखता है।]

भाग्यवन्ती : ओफ···सी··· (एक चीख)

रघुनाथ : कांटा मोटा है। बहुत गहरे उतर गया है। मैं अभी एक दूसरा कांटा तोड़कर लाता हूं। तुम ऐसे ही बैठी रहना।

[कांटा तोड़ने पृष्ठभूमि में जाता है]

भाग्यवन्ती : बुद्धू।

[कांटा लेकर आता है, निकालता है और रूमाल से पट्टी बांध देता है। कन्या चुप बैठी है और रघुनाथ कांटे की ओर देखता है।]

रघुनाथ : अब तो दर्द नहीं? मैं न निकालता तो कांटा गड़ा रहता।

भाग्यवन्ती : कोई एहसान थोड़ा है बाबू जी। तुम्हारे भी कभी ऐसा कांटा गड़ जाए, तो निकलवाने आ जाना, हूं?

रघुनाथ : (**जल जाता है**) अच्छा।

भाग्यवन्ती : अच्छा क्या? जाओ, अपना रास्ता लो।

रघुनाथ : यह कांटा तो मैं ले जाऊंगा। आज की घटना याद रहेगी। हमेशा याद रहेगी।

भाग्यवन्ती : लाओ ज़रा मैं भी देख लूं।

[रघुनाथ अंगूठे और तर्जनी से कांटा पकड़कर उसकी ओर बढ़ाता है। कन्या अपनी दो अंगुलियों में उसे पकड़कर और दूसरे हाथ से रघुनाथ को धक्का देकर खिलखिलाती दौड़ जाती है। रघुनाथ सिर को झटका देता हुआ उसे दौड़ते हुए देखता है। प्रकाश बुझता है। कुछ क्षण के

उपरान्त प्रकाश का एक दूसरा वृत्त। मूढ़ों पर बाबू जी, रघुनाथ की मां, रघुनाथ के चाचा, एक महिला और एक पुरुष बैठे हैं।]

पुरुष : अरी ओ बिटिया···। दूध लाओ और देखो खाने को कुछ मीठा भी लेती आना। पंडित शोभाराम, उनकी पत्नी और उनके भाई आए हैं।

रघुनाथ की मां : बस ! न हमें दूध पीना है, न कुछ खाना है, हमें तो सिर्फ लड़की देखनी है।

पुरुष : हां-हां, लड़की तो देखो बहन जी। शोभाराम जी बहुत दिनों से इन्तज़ार था कि कब आप अपने लड़के की शादी के लिए तैयार हों। कितनी बार आपके यहां आगरा में भी पहुँचा। कितने सौभाग्य की बात है कि आज आप हमारे घर पधारे हैं। मेरा अहोभाग्य।

[लड़की एक थाली में सबके लिए दूध के गिलास और लड्डू लाती है। बाबू जी और रघुनाथ की मां लड़की को बहुत गौर से देखते हैं। लड़की शर्माती है तथा दूध-लड्डू परोसने के बाद एक ओर खड़ी हो जाती है।]

बाबू जी : वाह ! लड़की तो बहुत सुन्दर है और हमारे बेटे की तरह चेहरा भी भोला है।

[लड़की शर्माती है।]

महिला : जाओ, जाओ बेटा अन्दर जाओ।

[अन्दर जाती है]

महिला : (**पुरुष से**) बिटिया शर्मा गई है।

पुरुष : (**महिला से**) शर्माने की बात तो है ही।

[पुरुष और महिला आपस में बातचीत करने का मूकाभिनय करते हैं।]

बाबू जी : (**फुसफुसाहट के स्वर में**) रघु की मां, कुछ बात बनती नज़र आती है?

रघुनाथ की मां : (**फुसफुसाहट के स्वर में**) अरे जाओ-जाओ, रहने दो। इतनी जल्दी क्या थी बोलने की। हैं···। लड़की का कद नहीं देख रहे हैं, कितना छोटा है। बच्चे छोटे पैदा होंगे, सुनते हो।

पुरुष : (**फिर सामान्य**) शोभाराम जी आपके हाँ करने की देर है। हम तो तैयार बैठे हैं।

रघुनाथ की मां : थोड़ा विचार विमर्श कर लेते हैं, बातचीत कर लेते हैं आपस में। दो-तीन दिन में आपको बतला देंगे, भाई साहब।

[प्रकाश बुझता है। साथ ही में एक और प्रकाश का वृत्त।एक व्यक्ति घनश्याम दास उतावले से घूम रहे हैं। दो मूढ़े, दो कुर्सियां और छोटा मेज़, सैट पर ये वस्तुएं पड़ी हैं। रघुनाथ की मां, चाचा और बाबू जी का प्रवेश। स्वागत।]

घनश्याम दास : आइए-आइए गंगाराम जी। आप ही लोगों का इन्तज़ार कर रहा था।

गंगाराम : बस आने में थोड़ी देर हो गई। आप हैं लड़की के पिता घनश्याम दास जी। बहुत पैसे वाले हैं और दिल के उदार भी। आप हैं रघुनाथ की माता और आप मेरे भाई शोभाराम जी।

घनश्याम दास : अरे, बहुत प्रसन्नता की बात है। बैठिए बहन जी। बैठिए, बैठिए आप भी बैठिए न। बैठो गंगाराम जी।

[सब बैठ जाते हैं। रघुनाथ की मां और बाबू जी आश्चर्य से इधर-उधर देखते हैं।]

घनश्याम दास : अरे वाह! आपकी तो बड़ी प्रशंसा सुनी है शोभाराम जी। रघुनाथ इण्टरमीडिएट ही है न?

बाबू जी : जी हां।

घनश्याम दास : जी बहुत अच्छी बात है। आगे तो उसका पढ़ने का विचार नहीं है न? भई लड़का हमारे यहां रहेगा। बहुत खुश रहेगा गंगाराम जी। ज़मीन सम्हालेगा, करोबार देखेगा।

बाबू जी : हूं।

[रघुनाथ की मां आश्चर्य से देखती-सुनती हैं। गंगाराम बहुत खुश नज़र आ रहे हैं।]

घनश्याम दास : शोभाराम जी, जब से बिटिया की माता गुज़री हैं, मैंने तो तय कर लिया है कि शादी अपनी बिटिया की वहां करूंगा जहां लड़का हमारे यहां रहेगा बहन जी।

[वह रघुनाथ की मां और बाबू जी को आश्चर्य में देखकर सहम जाता है। वैसे गंगाराम जी, यह

तो भाग्य की बात है कि लड़का पड़ोस के गांव से मिला है। आप लड़की अपने घर में बहू बना कर रखिए। नया मकान भी बनवा लेंगे।]

बाबू जी : हूं।

घनश्याम दास : दहेज की कोई कमी नहीं होगी पर लड़का रहेगा इसी गांव में। कारोबार सम्हालेगा, ज़मीन देखेगा। (**रघुनाथ की मां को आश्चर्य में देखकर**) देखिए बहन जी भी कितनी उतावली नज़र आ रही हैं। लड़की देख लो पहले बाकी बात बाद में।

अरी ओ बिटिया इधर आओ तो…ही ही…ही ही…गंगाराम जी शर्मा रही है, मैं खुद लेकर आता हूं।

[बाबू जी अपनी धर्मपत्नी की ओर देखते हैं। वह स्त्री सुलभ भंगिमा से 'हूं' करती है।]

बाबू जी : गंगाराम, कहां ले आए हो तुम हमें ? कुछ तो अक्कल की बात की होती। हमें यहां लाने से पहले खुद तो घर परख लेते।

रघुनाथ की मां : (**खड़ी हो जाती है**) चलो जी, घर ही पसन्द नहीं लड़की क्या देखनी है।

बाबू जी : रघु की मां, कुछ तो अक्कल की बात करो, अरे इस तरह उठकर जाना अच्छा लगता है ? लड़की देख लो। मैं कौन सी बात तय कर रहा हूं। गंगाराम…

रघुनाथ की मां : (**बैठ जाती है**) अरे चुप रहो, आ रहे हैं वो…

[प्रकाश बुझता है और साथ ही प्रकाश का एक

और वृत्त। रघुनाथ एक मूढ़े पर बैठा पुस्तक पढ़ रहा है। बाबू जी, गंगाराम और रघुनाथ की मां का प्रवेश।]

बाबू जी : रघु बेटा, पानी पिलाओ।

[रघुनाथ पृष्ठभूमि में पानी लाने जाता है।]

बाबू जी : गंगाराम, थक गए हैं बुरी तरह से।

[चुप्पी। रघुनाथ एक थाली में पानी के तीन गिलास लाता है। पानी पीने के उपरान्त गिलास वापिस ले जाता है।]

गंगाराम : भैया अब तो एक ही घर बचा है। लड़की देखो या न देखो। आप ही जानो। मेरे बस में जो घर थे रोक रखे थे।

रघुनाथ की मां : थोड़ा पहले मान जाते तो अच्छे अच्छे घर न गंवाते। कितने ही लड़कियों वाले शहर में आते थे। इण्टर-मीडिएट का इम्तहान पास होने के बाद लड़के का ब्याह करेंगे। हो गया लड़का इण्टरमीडिएट ?

बाबू जी : क्यों बहस करती हो रघु की मां। अभी एक घर है देखने को। मैंने तो लड़की देखी है। घर भी अच्छा है। क़द-काठ भी ठीक है। अब तुम घर देख लो तो बात पक्की करें।

गंगाराम : भाभी जी, लड़की बहुत अच्छी है। अपनी तसल्ली के लिए घर देख लो। कहो तो यहाँ बुलवा दूं। पर समय बर्बाद मत करो। पंडित जी को बुलवा कर मुहूर्त निकलवा लेते हैं। शादियां बहुत हो रही हैं। फिर ढूंढने से कोई पंडित भी नहीं मिलेगा पूरे इलाके में।

बाबू जी : सुत पितु मारक जोग लखि
उपज्यो हिय अति सोग।
पुनि विहंस्यों गुन जोयसी
सुत लखि जारज जोग।

[हंसते हैं]

क्या समझे, बिहारी के इस व्यंग्य को ? ग्रहों के पीछे सन्तान को जारज बना दिया बिहारी ने। (हंसते हैं) जो होना है वह होकर रहेगा रघु की मां।

रघुनाथ की मां : **(खुशी से नखरा दिखाती है)** बस समझो रिश्ता तय है।

बाबू जी : **(हंसते हुए)** रघु बेटा···अपनी चाची जी को कहो खाने को कुछ मीठा बनाए।

[प्रकाश बुझता है। कुछ क्षण बाद पृष्ठभूमि से विवाह के एक गीत की कुछ पंक्तियाँ—

बज वे शहनारियाँ, बज चीरे बालेया
बाबुल बेड़े बज वे
जै तुसीं आये बजदे बाजे
अगे ता साडे उचे दरवाजे, बाबुल बेड़े बज वे
बज वे शहनारियाँ.........

जे तुसीं आये बजदे शहनारियाँ
आंगन साडा फुलाँ ते परया, बाबुल बेड़े बज वे
बज वे शहनारियाँ.........

गीत समाप्त होता है। मंच पर प्रकाश का एक वृत्त। कुछ बूढ़ी औरतें बातचीत की मुद्रा में।]

पहली बूढ़ी : देखा मथुरा की मां, लगन के बखत पे दूल्हा-दुल्हिन

कैसे पागलों की तरह इधर-उधर झांक रहे थे। धरती पर उसके पांव भी ठीक तरह नहीं पड़ रहे थे।

दूसरी बूढ़ी : काकू शाह की लाड़ी ! झण्डीपुर की जनानियों से बढ़कर इस बात को कौन समझ सकता है। अरे हमने कई शादियां देखी हैं। हम तो लच्छन एक घड़ी में जान जाती हैं।

तीसरी बूढ़ी : दुल्हा कुछ बौंखलाया हुआ सा नज़र आ रहा था। ऐसा लग रहा था जैसा किसी ने टोना कर दिया हो।

चौथी बूढ़ी : होगी कोई लागत-बाजी।

पहली बूढ़ी : अरिओ लागत-बाजी की कोई बात नहीं। ग्रह मिले नहीं होंगे और जन्म पत्रियां झूठी ही मिला दी होंगी।

दूसरी बूढ़ी : चुप री। हमें क्या लेना-देना। जो कपाल में लेख लिख दिए हैं उनको कौन मिटा सकता है ?

पहली बूढ़ी : मेरी तो एक नज़र टिकी थी दूल्हा-दुल्हिन पर। तुम्हें याद है जब दुशाला डालकर एक दूसरे का मुँह दिखलाया जा रहा था, उस बखत लाड़ी को देखके दूल्हे का मुँह कैसा फक् हो गया था ?

दूसरी बूढ़ी : मुँह पर ऐसा हाव-भाव अच्छा नहीं होता बहन।

तीसरी बूढ़ी : लड़की भी लाड़े को देखकर एक बेजान मुर्दे की तरह लग रही थी, जैसे उसमें जान ही न हो। चेहरा बिल्कुल फक् सफेद।

दूसरी बूढ़ी : हम तो लाड़ी के साथ-साथ रहीं। सारे दिन हम उससे बातें करती रहीं वह कुछ न बोली।दांतों से नख काटती रही, पांव के अंगूठे से मिट्टी कुरेदती रही। ऐसा लग रहा था जैसे उसने कोई भूत देख लिया हो।

तीसरी बूढ़ी : अच्छा नहीं हुआ काकूशाह की लाड़ी। शादी टूटेगी। अगर टूटी नहीं तो जुड़ेगी भी नहीं। हमेशा खटपट

रहेगी । लड़की है चटपटी, लड़का है बिल्कुल जड़-भरत ।

चौथी बूढ़ी : चलो री, हमने क्या लेना-देना । हम तो ब्याह देखने आई थीं । आम खाए हैं तो पेड़ों को क्यों गिनें ?

पहली बूढ़ी : मैं तो कहती हूं यह छोकरा इस लड़की के पांव दबाएगा, इसके आगे पानी भरेगा ।

दूसरी बूढ़ी : हमें क्या लेना-देना किसी के घर-आंगन से, चलो घर चलें । अब तो बारात भी जा चुकी है ।

[प्रकाश बुझता है । पृष्ठभूमि में कहारों और बारातियों का एक बड़ की छाया के नीचे डेरा । पृष्ठभूमि से उनका शोरगुल सुनाई दे रहा है— 'कितना घना पेड़ है यह बड़ोटे का ।' 'हमारे दादाजी के बखतों में भी ऐसा ही था ।' 'बहुत पुराना होगा ।' 'कहते हैं पाण्डवों ने यहां एक रात वास किया था ।' 'कितनी ठण्डी हवा है— यहां आकर चैन पड़ी है ।' 'ओ बोटिया जी जल्दी करो देर हो जाएगी ।' 'बझिया थोड़ी-सी लकड़ी और लाओ, चूल्हा ठीक तरह से नहीं सुलगा है ।' 'अभी लाया ।' 'बच्चों को भूख लग रही है ।' 'बावड़ी का पानी तो बड़ा ठण्डा है ।' 'भाई वाह !' 'सुनो भाई चाचा जी भी पीएंगे ।' 'अरे पूरी बाल्टी भर लाओ ।' 'बाबूजी की झपकी लग गई है ।' 'खाने के वक़्त उठा देना भाई ।' 'अरे मेरी थैली तो पालकी के बांस में ही बंधी रह गयी, मैं ले आता हूं ।' 'अभी मत जाना, लाड़ी-लाड़ा आपस में बातें कर रहे होंगे ।' तो थोड़ा तम्बाकू तो दो चिलम के लिए ।' 'तम्बाकू

तो मेरे पास भी नहीं है।'

मंच के दायें धरी पालकी पर प्रकाश का एक वृत्त। भाग्यवन्ती पालकी का पर्दा हटा कर बाहर झांकती है।]

भाग्यवन्ती : दोपहर चढ़ आई है। कहारों ने बड़ की छाया के नीचे डेरा लगा लिया है। बाराती आराम कर रहे हैं। **(सन्तोष से आह भरती है)**

[रघुनाथ एक ओर से आता है।]

रघुनाथ : क्या कहा था, ऐसे मर्द के आगे कौन लहंगा पसारेगी ?

[भाग्यवन्ती सिर पालकी के भीतर करके पर्दा डाल लेती है।]

हां फिर तो कहना, इस बुद्धू के आगे कौन लहंगा पसारेगी।

[भाग्यवन्ती चुप।]

याद है वह कुएं पर की ठिठोली। तुम ही हो वह जो कांटा निकालने के बाद मुझे धक्का देकर भाग गई थीं। बोलो अब वह कैंची सी जीभ कहां गयी ?

भाग्यवन्ती : तुम्हें मेरी कसम इस घड़ी कुछ नहीं बोलोगे। अगर किसी ने सुन लिया तो बुरा होगा।

रघुनाथ : बुरा तो जो होना था वह हो ही गया। दूसरों की इतनी शर्म होती तो पहले सम्भल कर चलतीं। तुमने तो शायद स्वप्न में भी ऐसा न सोचा होगा कि यों हमारे सम्बन्ध जुड़ जाएंगे पर अब तुम आ ही गई हो बहू बन कर तो सिखा दो 'पिराग जी' वालों को अक्कल।

भाग्यवन्ती : **(थोड़ा सा पर्दा हटाती है)** मैं हाथ जोड़ती हूं, मुझसे मत बोलो, मैं मर जाऊंगी।

रघुनाथ : तुमने क्या कहा था कि तुम्हारे यहां नदी नहीं है, डूबने का डर नहीं। हमारे यहां तो नदी है अगर मर जाओगी तो नदी में डूबते हुए बुद्धूओं को कौन निकालेगा ?

भाग्यवन्ती : अब रहने भी दो। यहां से हट जाओ। चले जाओ। इस शकुन की घड़ी में इस तरह की बात नहीं किया करते।

[एक कहार आता है।]

कहार : मेहर हो बाबूजी। मेरी तम्बाकू की थैली यहां रह गई है डोली के बांस में बंधी। इसे उठा ले जाऊं जी।

रघुनाथ : ले लो !

[कहार जाता है।]

रघुनाथ : कहां है तुम्हारी वह मामी जो कुएं पर मुझको पानी पिलवा रही थी ? और तुम्हीं हो न वह जो मुझे मामी का पालतू पिल्ला बना रही थीं।

[चुप]

तुमने कहा था न कि लोटे डोरे वाली बात तुम मेरी बहू से नहीं कहोगी। अब कहो न तुम यही बात अपने आप से। तुम ही हो न मेरी बहू ?

भाग्यवन्ती : वह, जो तुमने देखी थी न कुएं पर, वह उसी दिन मर गई थी, जब उसने आपके साथ सात बार भांवरें लीं, सात बार कसमें खायीं। उस नटखट सी, अल्हड़-चुलबुल लड़की को यह क्या पता था कि आप ही वह हैं

जिसके साथ उसका विवाह होना है। पहाड़ में लड़कियाँ ऐसे ही मर जाती हैं क्योंकि विवाह के बाद उनका नया जन्म होता है। भागो मर चुकी है, कब की मर चुकी है। अब जिसे ब्याह कर लाए हो वह भागो नहीं भाग्यवन्ती है। तुम्हारी पत्नी।

रघुनाथ : वह लोटा डोरी भी रखे हैं मैंने सम्हालकर उन्हें मैंने नदी में नहीं फेंक दिया। अब सिखाओगी तुम मुझे आगरे में जाकर कुएं में से पानी निकालना। स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को कौन जान सकता है? शायद इस बुद्धू के भाग्य में यही सब लिखा था।

भाग्यवन्ती : कहो तो मैं वापस चली जाऊं। कहारों को बुलाओ डोली वापस ले जाएं। आपने तो मेरा कालजा ही छील दिया। जब मन में घाव पड़ गया था तो शादी क्यों करवाई। इतनी बड़ी दुनिया में और कोई नहीं मिली आपको, आपके मां-बाप को? एक भागवन्ती ही लिखी थी आपके नाम?

रघुनाथ : तुम्हें लाज न पहले थी और न अब है। तुम तो मुझे हर तरह से तंग करने के लिए पैदा हुई हो। तुम चाहती हो कि मैं बरबाद हो जाऊं पर मेरी अनुमति के बिना अब एक कदम भी पीछे की ओर नहीं रख सकती तुम। मैं तुम्हें भगाकर नहीं लाया। तुमसे विवाह किया है। जब हाथ पकड़ा है तो निभाना भी पड़ेगा ही।

भाग्यवन्ती : अगर निभाने का दम भरते हो तो फिर यह बातें किसको सुना रहे हो। तुम जानते हो अब इस संसार में मेरा कोई नहीं। बूढ़े पिता हैं उनका भी घर-आंगन छूट गया है। मां बचपन से ही चल बसी थी। लोगों के घर में पल कर बड़ी हुई हूं। स्वभाव भी कुछ ऐसा ही रहा है। स्वभाववश अगर मुझसे भूल हो ही गई तो

इतनी तूल क्यों दे रहे हो ? ज़्यादा खींचने से धागा टूट जाया करता है।

रघुनाथ : अद्भुत स्त्री हो तुम भी। जो नज़र आती हो वह नहीं हो और जो हो वह अब नज़र आने लगी। फिर भी मैं देखूंगा कि तुम ये बातें कहीं विवशता में तो नहीं कर रहीं। मुझे तुम्हारी परीक्षा लेनी होगी। यह देखना होगा कि तुम मेरे घर में किस तरह रहती हो। मेरे माता-पिता से तुम्हारा कैसा बर्ताव है।

भाग्यवन्ती : बर्ताव ? वह तो आने वाला वखत ही बताएगा। अब तो इस चक्की में ऐसे ही पीसना है। जन्म भर का रोग है, जन्म भर का रोना है।

[प्रकाश बुझता है। पृष्ठभूमि में होली के एक गीत की कुछ पक्तियां और 'होली है-होली है' की पुकार—

चलो गोरी आज खेलें होली रे कन्हैया संग,
अबिर गुलाल के बादल छाए केसर रंग भरो री,
अपने पिया संग होली खेलें चलो गोरी आज खेलें होली।

[मंच पर प्रकाश]

बाबू जी : होली की तीन छुट्टियां हैं। हो सकता है रघु आ जाए। इलाहाबाद में उसका दिल पढ़ाई में नहीं लग रहा होगा।

रघुनाथ की मां : सुबह कौआ बोल रहा था। कल से बांई आंख भी फड़क रही है। फिर नई-नई शादी हुई है, आएगा क्यों नहीं। अपने दिन भूल गए क्या ?

बाबू जी : अच्छा-अच्छा, छोड़ो अब इन बातों को। कुछ पकवान तो बनाओ, त्यौहार का दिन है। तुम्हारे बेटे-बहू की

यह पहली होली है।

रघुनाथ की मां : हैं···। तुम्हारे बेटा-बहू नहीं हैं क्या ?

बाबू जी : अच्छा सुनो, इनसे अब की वार ज़्यादा बात मत करना। मौक़ा देना आपस में मिलने का।

रघुनाथ की मां : लो सुन लो इनकी बातें ! मैं कोई बच्ची हूं ?

[रघुनाथ का प्रवेश।]

बाबू जी : यह लो इसका नाम ही ले रहे थे कि यह आ गया। आओ बेटा। तुम्हारी बड़ी लम्बी उम्र है। अभी-अभी तुम्हारी बातें हो रही थीं। (**रघुनाथ पांव छूता है।**) जीते रहो !

[रघुनाथ मां के पांव छूता है।]

रघुनाथ की मां : जीते रहो बेटा ! कैसे हो तुम ? ठीक ठाक तो रहे ?

रघुनाथ : जी, मां जी।

बाबू जी : बहू को बोलो रघु आया है।

रघुनाथ की मां : बहू-बहू सुनती हो···। इधर तो आओ ज़रा, रघु आया है।

[भाग्यवन्ती का घूंघट काढ़े हुए प्रवेश। रघुनाथ के पांव छूती है। रघुनाथ के आशीर्वाद के शब्द होठों पर ही रह जाते हैं।]

बाबू जी : इसका मुंह-हाथ धुलाओ, पानी-वानी पिलाओ।

रघुनाथ : आगरे में तो बड़ी धूल है मां। ताजमहल जितना सुन्दर है, आगरा शहर उतना ही गन्दा। हमारे प्रयाग की

सड़कें तो यहां के मुकाबले में काफ़ी साफ-सुथरी हैं।

बाबू जी : गंगा जमुना का पावन संगम है प्रयाग। ऐसे तीर्थ स्थान में रहना किसी भी ब्राह्मण पुत्र के लिए सौभाग्य की बात है।

रघुनाथ : मैं और मेरे सहपाठी तो सुबह-सवेरे स्नान भी कर आते हैं, त्रिवेणी संगम पर।

बाबू जी : बहुत अच्छा करते हो। अच्छा रघु की मां मैं तो बाज़ार चला। देखूँ कुछ फल-वल ही मिल जाएं।

रघुनाथ की मां : ठीक है, पर ज़रा ध्यान से आना। आगरा की होली है। कोतवाली बाज़ार में ऊधम मची होगी।'

बाबू जी : अगर रंग ही न पड़े तो होली कैसी ? मेरी चिन्ता मत करो मैं गया और आया।

रघुनाथ की मां : सुनो थोड़ा सा मेवा भी लेते आना। झोला ले लिया है क्या ?

बाबू जी : पकड़ा दो।

[पृष्ठभूमि से झोला लाती है। बाबू जी का प्रस्थान।]

रघुनाथ की मां : अच्छा बहू तुम रघु का मुंह हाथ धुलाओ इसे पानी-वानी पिलाओ। नाश्ता दे देना। मैं कन्हैया की मां के यहां हो आऊं। उसको चक्की में पीसने के लिए गेहूं दे रखी है।

[प्रस्थान]

रघुनाथ : अब किधर को चली ? **(हाथ पकड़ने की कोशिश करता है।)**

भाग्यवन्ती : कुछ तो शर्म करो।

रघुनाथ : तुम तो बात ही नहीं करती हो। ऐसी भी क्या चुप्पी है। उस दिन की बातों से नाराज़ तो नहीं हो गयीं ? मर्द हूं। तैश आ ही जाता है।

[चुप]

मुझसे कोई ग़लत चेष्टा हुई हो तो क्षमा चाहूंगा।

भाग्यवन्ती : कैसे आदमी हो ? मर्द होकर एक औरत से क्षमा मांगते हो।

[अन्दर चली जाती है और दूसरे ही पल एक पटरा, अंगोछा, बाल्टी तथा जल का लोटा लाती है।]

भाग्यवन्ती : हाथ-मुंह धो लो।

[पृष्ठभूमि से होली के गीत की पक्तियां। 'होली है-होली है' की पुकार। रघुनाथ हाथ-मुँह धोता है। भाग्यवन्ती अंगोछा देती है। अन्दर से एक चटाई लाकर बिछाती है। जल का लोटा आदि वापस ले जाती है। दूध का गिलास तथा एक तश्तरी में मट्ठी, लड्डू और पेठा लाती है, रघुनाथ को देती है।]

रघुनाथ : तुम नहीं खाओगी क्या ?

[चुप]

लो मेरे हाथ से खा लो।

[चुप]

उस वक़्त भी तो खाया था जब भांवरें ली थी।

[चुप]

स्त्रियों को इतना क्रोध नहीं करना चाहिए। धर्मशास्त्र में कहा गया है।

[न खाते हुए भाग्यवन्ती जाने लगती है।[

रघुनाथ : ठहरो, बाहर मत जाना।

[भाग्यवन्ती ठहर जाती है। वह घूंघट खींच कर बैठ जाती है।]

कहो कैसी हो ? आज तुमसे बहुत-बहुत बातें करनी हैं।

[चुप]

प्रसन्न तो रहती हो ?

[चुप]

मेरी छुट्टियां तीन दिन की हैं।

[चुप]

तुम्हें मेरी कसम है, चुप मत रहो, कुछ तो बोलो। जवाब दो। पहले की तरह ताने ही से बोलो। मेरी सौगन्ध, सुनती हो ?

भाग्यवन्ती : मेरे कानों में पानी थोड़े ही भर गया है।

रघुनाथ : हां, बस, यों ठीक है। कुछ ही कहो, पर कहती जाओ। अच्छा होता जो तुम मुझे उस दिन नदी से न निकालतीं और डूब जाने देतीं।

भाग्यवन्ती : तो यह भी अच्छा होता कि तुम मेरा कांटा न निकालते मेरा पाँव गल जाता, मेरा सारा शरीर गल जाता और मैं मर जाती।

रघुनाथ : याद करो तुमने कहा था कोई एहसान थोड़े ही है। कांटा गड़ जाए तो तुम भी निकाल दोगी।

भाग्यवन्ती : हां, निकाल दूंगी। (**रुआंसे स्वर में**) निकालूंगी नहीं? क्या मैं तुम्हारी कुछ नहीं लगती?

रघुनाथ : कैसे निकालोगी?

भाग्यवन्ती : उसी कांटे से।

रघुनाथ : उसी कांटे से। वह है कहां?

भाग्यवन्ती : मेरे पास।

रघुनाथ : क्या तुमने अभी तक उसको सम्भाल कर रखा है? तुम भी बहुत विचित्र औरत हो। वह कांटा तुमने सम्भाल कर रखा है? कब से?

भाग्यवन्ती : जब से पतलून ट्रंक में बन्द होकर आगरे आयी तभी से। उसकी जेब में सहेज कर रखा है।

रघुनाथ : मैं तो अनाड़ी हूं। अनाड़ी की बात की नकल करती हो?

भाग्यवन्ती : हां।

रघुनाथ : अनाड़ियों की पीठ नाखून गाड़ने के लिए अच्छी होती है न! कांटा निकालोगी?

भाग्यवन्ती : हां।

रघुनाथ : कांटा छत में थोड़े ही है।

भाग्यवन्ती : तो कहां है?

रघुनाथ : मैं तो हूं अनाड़ी, मुझे लल्लो पत्तो करना नहीं आता,

साफ कहना जानता हूं। सुनो !

[रघुनाथ बढ़ता है और उसके दोनों हाथ पकड़ लेता है। वह हाथ नहीं उठाती।]

रघुनाथ : उस समय मैं जंगली था, वहशी था, अधूरा था। मनुष्य जब तक स्त्री की परछाईं नहीं पा ले तब तक पूरा नहीं होता। मेरे बुद्धूपन को क्षमा करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का कांटा गड़ गया है। जिस दिन तुम्हें पहले पहल देखा उस दिन से वह गड़ रहा है और अब तक गड़ा जा रहा है। तुम्हारी प्रेम की दृष्टि से मेरा यह शूल हटेगा।

[एक-दूसरे के आंखों के अन्दर देखते हैं।]

देखो मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नहीं सकता। पीछे जो हुआ सो हुआ। उसे समझ लेना मेरा बचपन था। मेरा उस दिन का रूखापन और जंगलीपन भूल जाओ। तुम मेरी प्राण हो। मेरा कांटा निकाल दो।

[रघुनाथ एक हाथ उसकी कमर पर डालता है और उसे अपनी ओर खींचता है। भाग्यवन्ती का शरीर निस्सार होकर रघुनाथ के कन्धे पर झूल जाता है।]

भाग्यवन्ती : मेरा कसूर—मेरा गंवारपन—मैं उजड्ड—मेरा अपराध—मेरा पाप—मैंने क्या कहा (घिग्घी बंध चलती है।)

[रघुनाथ और भाग्यवन्ती का मधुर मिलन। प्रकाश बुझता है।]

☐☐